G

गीता गोविंद काव्यम्

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

१२९

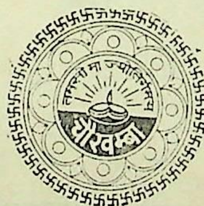
महाकवि श्रीजयदेवविरचितं

गीतगोविन्दकाव्यम्

'इन्दु' नामक हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः-

पं० श्री केदारनाथ शर्मा



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९७६

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : पंचम, वि० सं० २०३३

मूल्य : ३–००

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 8, Varanasi–221001 (India)

Phone : 63145

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १३८, वाराणसी–२२१००१

(भारत)



समर्पणम्

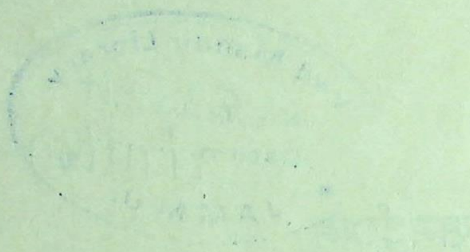
आनन्दकन्द परमानन्द

भगवान्

मुकुन्दके कराम्बुजोंमें

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये

केदारनाथ शर्मा



प्राक्कथन

संस्कृत साहित्यमें श्रीजयदेव कविका गीतगोविन्द अजर, अमर तथा अद्वितीय काव्य है। यह अपने ढंगका निराला है। इसमें कविने प्रेम-भक्तिकी जो पावनदायिनी निर्मल धारा प्रवाहित की है, उसका एक एक बिन्दु प्रेमियों तथा भक्तोंके हृदयोंको उद्वेलित कर देता है। हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध विद्वान् 'परम-प्रेमनिधि रसिकवर' बाबू हरिश्चन्द्रजी भारतेन्दुकी भी हृत्तन्त्री इसके निनादसे ऐसी बजी कि मूलकाव्यके अनुवादमें उसका सारा आनन्द हिन्दी प्रेमियोंके लिए "गीतगोविन्दानन्द"में सुलभ हो गया। इस अनुवादको मूलके साथ पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देना ही इसके सम्पादकका केवल प्रयास है, इससे अधिक नहीं। यह अनुवाद कैसा हुआ है, इसकी विवेचना प्रत्येक रसिक पाठक-पर ही छोड़ दी जाती है। वे इसको पूर्णरूपेण पढकर इसका रसास्वाद लें। शुरूमें श्रीजयदेव कविका जीवनचरित्र, भारतेन्दु-कृत चरितावलीसे लेकर दिया गया है। आशा है, पाठकगण इस सद्ग्रन्थसे अवश्य आनन्द उठावेंगे।

अन्तमें प्रिय पाठकोंके प्रति यह भी सूचित करते हुए हर्ष होता है कि इस 'इन्दु' टीकामें मैंने जहाँतक हो सका है हिन्दी के वर्त्तमान चलते-फिरते तथा अल्पाक्षरोंवाले शब्दोंका ही प्रयोग किया है। इसी रीतिसे यथासम्भव ग्रन्थमें वर्णित श्लोकोंके ही शब्दोंका समावेश टीकामें करनेका यत्न किया है। किन्तु, यत्रतत्र भाव स्पष्ट करनेके लिये तथा अनुप्रासमयी भाषा बनानेके लिये कुछ ऊपरसे भी लिखा है। यथास्थानमें कोष, छन्दोंके लक्षण तथा श्लिष्ट पदों को टिप्पणीमें झलका दिया है।

तत्पश्चात्—साहित्यसेवी बाबू व्रजरत्नदासजी वकील महोदयको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनकी दयादृष्टिसे मैंने कविकी चारु-चरितावली लिखनेमें क्षमता पायी ।

पुनश्च–नेपालके प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित विद्वान् पूज्य पं० शेषराजजी शास्त्री, काव्यतीर्थ तथा पं० ब्रह्मशंकरजी साहित्यशास्त्री एवं पं० रामचन्द्रजी झा व्याकरणाचार्यके प्रति भी प्रेमानुराग प्रकट करता हुआ विराम लेता हूँ, जिन्होंने मुझे गीतगोविन्दकी टीका करनेको बाध्य किया विशेषरूपेण चौखम्बा सीरीज के अध्यक्ष महोदयोंको धन्यवाद दे रहा हूँ, जिनकी शुभ कृपासे यह ग्रन्थ आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित कर सका ।

द्रष्टव्य—कुछ लोगोंके मतानुसार "पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती" का अर्थ पद्मावती शब्द उनकी भार्याका बोधक है परन्तु, अन्योंके मतानुसार पद्मावती-का अर्थ राधा स्वीकार करना अच्छा है । इसी विचार-विमर्शमें पड़कर मैंने भी "पद्मावती"का अर्थ राधा लिखा है क्योंकि प्रार्थनाके समय देववाची शब्द ही उपयुक्त होते हैं, अस्तु । पाठकोंको जैसी अभिरुचि हो वैसा अर्थ ग्रहण करें ।

भवदीय—

—केदारनाथ शर्मा

महाकवि श्रीजयदेव

प्रातःस्मरणीय प्रेम-भक्ति शिरोभूषण श्रीजयदेवकविकी कविताका अमृतपान करके तृप्त, चकित, घूर्णित तथा मोहित कौन नहीं होता एवं किस देशमें कौनसा ऐसा विद्वान् है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो वह जयदेवकविकी काव्यमाधुरीका भक्त न हो। जयदेवकविका यह अभिमान है कि अङ्गूर तथा ईखकी मिठास उनकी कविताके आगे नीरस (फोकी) है नितान्त सत्य है। इस मिठाईको न चींटाका डर है तथा न पुरानी होकर सड़ने-गलनेका भय है। मिठाई तथा नमकीन दोनों है। यह नयी बात है—ध्यान देने, पढ़ने तथा सुननेकी बात है, पर गूंगेका गुड़ है। निर्जन वनमें पर्वतमें जहाँपर कि बैठनेको बिछौना भी न हो वहाँ 'गीतगोविन्द' आनन्दको सभी समग्री देता है, जहाँ कोई रसिक, भक्त, प्रेमी मित्र न हो वहाँ यह सब कुछ बनकर साथ रहता है, जहाँ गीतगोविन्द है वहीं वैष्णवगोष्ठी है, वहीं रसिक समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है तथा वहीं प्रत्यक्ष परमानन्द है। यह भी कोई जानता है कि इस परब्रह्ममय प्रेम-सर्वस्व श्रृंगार-समुद्रके जनक श्रीजयदेव कवि कहाँ हुए ? कोई नहीं जानता तथा न इसकी खोज करता है। प्रोफेसर (प्राध्यापक) लैसेनने लैटिन-भाषामें तथा पूनेके प्रिन्सिपल आरनडल साहबने अंग्रेजी भाषामें गीतगोविन्दका अनुवाद किया, किन्तु, कविका जीवन-वृत्तान्त कुछ भी नहीं लिखा, केवल इतना ही लिख दिया कि सन् ११५० के लगभग जयदेवकवि उत्पन्न हुए । परन्तु धन्य है, बा० रजनीकान्त गुप्त जिन्होंने सर्वप्रथम इस विषयमें हाथ लगाया तथा 'जयदेव चरित्र' नामक एक छोटासा ग्रंथ इस विषयपर लिखा । यद्यपि समय-निर्णयमें अन्य जीवन चरित्रमें हमारे उनके मतमें अनैक्य है तथापि उनके ग्रन्थसे हमको अनेक सहायताएँ मिली हैं, यह मुक्त कंठसे स्वीकर करना होगा । तथा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उन्हींके ग्रन्थने हमारी अभिलाषाको इस विषयपर लिखनेको प्रवल किया है। "वीरभूमि"से प्रायः दस कोस दक्षिण 'अजयनद'के उत्तर किन्दुविल्व ग्राममें श्रीजयदेवकविने जन्म लिया था । सम्भव है, कि

कन्नौजसे आये हुए ब्राह्मणोंसे श्रीजयदेवकविका वंश भी हो। इनके पिताका नाम भोजदेव तथा माताका नाम रामादेवी था। इन्होंने किस समय अपने प्रादुर्भावसे भूमिको विभूषित किया, यह अबतक निर्णय नहीं हुआ। श्रीयुक्त सनातन गोस्वामीने लिखा है कि—बंगालके अधिपति महाराज लक्ष्मणसेनकी सभामें जयदेवकवि विराजमान थे। अनेक जनोंका भी यही मत है तथा इस मतके पोषणार्थं लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेनके द्वारपर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था जिसके ऊपर यह श्लोक लिखा हुआ था।

"गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च" ॥

श्री सनातन गोस्वामीके इस लेखपर अब तीन बातोंका निर्णय करना आवश्यक हुआ। प्रथम यह कि लक्ष्मणसेनका क्या काल है। दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बंगालका प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है। तीसरे यह कि यह बात विश्वसनीय है कि नहीं कि जयदेवकवि लक्ष्मणसेनकी सभामें थे। प्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाजिउद्दीनने 'तबकातेनासिरी'में लिखा है कि जब बखतियार खिलजीने बंगाल जीत लिया तब लछमनिया नामक राजा बंगालमें राज करता था। इनके मतसे लछमनिया बंगालका आखिरी राजा था। किन्तु, बंगदेशके इतिहाससे स्पष्ट है कि लछमनिया नामका कोई भी राजा बंगालमें नहीं हुआ। लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेनके पुत्र लक्ष्मणसेनके माधवसेन तथा केशवसेन। 'लाक्ष्मनेय' इस शब्दके अपभ्रंशसे लछमनिया लिखा है। राजशाहीके जिलेसे मेटकाफ नामक एक साहबकी एक पत्थरपर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है। यह प्रशस्ति राजा विजयसेनके समयमें प्रद्युम्नेश्वर महादेवके मन्दिरके निर्माणके वर्णनमें उमापतिधरकी बनायी हुई है। डाक्टर राजेन्द्रपाल-मित्रके मतसे इसकी संस्कृतकी रचनाशैली, नवम, दशम वा एकादश शताब्दी की है। दुःख है कि इस प्रशस्तिमें रचनाकाल–संवत् नहीं है नहीं तो जयदेव-कविके समयनिरूपणमें इतनी कठिनाई न पड़ती। इसमें हैमन्तसेन, सुमन्त-सेन तथा वीरसेन ये ही तीन नाम विजयसेनके पूर्वपुरुषों के दिये हैं जिससे प्रकट होता है कि वीरसेन ही वंशका स्थापनकर्त्ता है। विजयसेनके विषयमें यह लिखा है कि उसने कामरूप तथा कुरुमण्डल (मद्रास तथा पुरीके बीचका देश) जय

किया था तथा पश्चिम जय करनेके लिए नौकापर गंगाके तटको सेना भेजी थी। तवारीखोंमें इन राजाओंका नाम नहीं है। 'आईने अकबरी''का सुखसेन (बल्लालसेनका पिता) विजयसेनका नामान्तर है क्योंकि बाकरगञ्जकी प्रस्तर-लिपिमें जो चार नाम हैं वे विजयसेन, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन, केशवसेन इस क्रमसे हैं। बल्लालसेन बड़ा विद्वान था तथा दानसागर, वेदार्थ स्मृतिसंग्रह इत्यादि ग्रंथ भी उसके कारण बने। कुलीनोंकी प्रथा भी बल्लालसेनकी स्थापित है। उसके पुत्र लक्ष्मणसेनके समयमें भी संस्कृत भाषाको बड़ी उन्नति थी। भट्टनारायण (वेणीसंहारके कवि) के वंशमें धनञ्जयके पुत्र हलायुध पण्डित उसके दानाध्यक्ष थे जिन्होंने "ब्राह्मणसर्वस्व" बनाया तथा इनके दूसरे भ्राता भी बड़े स्मार्त्त आह्निककार थे जिनका नाम पशुपति था। कहा जाता है कि गौडका नगर बल्लालसेनने बसाया था किन्तु लक्ष्मणसेनके समयसे उसका नाम लक्ष्मणवती (लखनौती) पड़ा। लक्ष्मणसेनके पुत्र माधवसेन तथा केशवसेन थे। राजावलीमें इनके पश्चात् सुसेन वा शूरसेन अधिक लिखा है, तथा मुस्लिम लेखकोंने नौजीव (नवद्वीप) नारायण, लखमन तथा लखमनिया ये चार नाम लिखे हैं।

अपरञ्च अशोकसेन भी लिखा है परन्तु इन सबोंका ठीक पता नहीं। मुस्लिम लेखकोंके मतसे लखमनिया अन्तिम राजा है जिसने ८० वर्ष राज्य किया तथा बखतियारके कालमें उसने राज्य छोड़ा। यह गर्भसे ही राजा था। नामका क्रम वीरसेनसे लछमनियातक एक प्रकारसे ठीक हो गया, परन्तु इनका समय-निर्णय अब भी न हुआ। किसी दानपत्रमें संवत् नहीं है। दानसागरके बनने का समय समयप्रकाशके अनुसार १०१९ शके (१०९७ ई०) है। इससे बल्लालसेनका राजत्व ग्यारहवीं शताब्दीके आखिरतक अनुमान होता है तथा यह "आईने अकबरी"से भी मेल खाता है। बल्लालसेनने १०६६ में राज्य आरम्भ किया था। अब सेनवंशका क्रम यों लिखा जा सकता है।

वीरसेन

सामन्तसेन

हेमन्तसेन

विजयसेन वा सुखसेन

बल्लालसेन	१०६६
लक्ष्मणसेन	११०१
माधवसेन	११२१
केशवसेन	११२२
लछमनिया	११२३

बल्लालसेनका समय १०६६ ई० समयप्रकाशके अनुसार है । यदि इसको प्रमाण न मानें तथा फारसी लेखकोंके अनुसार लछमनियाके पहले नारायण आदि और राजाओंको भी मानें तो बल्लालसेन अधिक पीछे जा पड़ेंगे । तो अब जयदेवकवि लक्ष्मणसेनकी सभामें थे कि नहीं यह विचार करना चाहिये। हमारी बुद्धिसे नहीं थे । इसके कई दृढ़ प्रमाण हैं । प्रथम तो यह कि उमापति-धर जिसने विजयसेनकी प्रशस्ति बनायी है, जयदेवकविका समसामयिक था, तो यह यदि मान लिया जाय कि जयदेवकवि, उमापति, गोवर्द्धनादि सभी सौ वर्षसे ज्यादा जीवित रहे हैं तब यह हो सकता है कि ये विजयसेन तथा लक्ष्मणसेन दोनोंकी सभाओंमें थे । दूसरे चन्दकविने जिसका जन्म सन् ११५० के लगभग है अपने रायसामें प्राचीन कवियोंकी गणनामें जयदेवकविको भी लिया है, तो डेढ़सौ वर्ष पूर्व हुए बिना जयदेवकविकी कविताका चन्दके समय-तक संसारमें आदरणीय होना असम्भव है । गोवर्द्धनने अपनी 'सप्तशती' में "सेनकुलतिलकभूपति" इतना ही लिखा, नाम कुछ नहीं दिया किन्तु उसीकी टीकामें "प्रवरसेन नामा इति" लिखा है। अब यदि प्रवरसेन, हेमन्तसेन वा विजयसेनका नामान्तर मान लिया जाय तथा यह भी मान लिया जाय कि जयदेवकविकी कविता संसारमें बड़ी जल्दी प्रसिद्ध हो गयी थी एवं समयप्रकाश के बल्लालका समय भी प्रमाण किया जाय तो यह अनुमान हो सकता है कि विजयसेनके समयमें अथवा उससे कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तकमें किसी वर्षमें जयदेवकविका प्राकट्य है तथा ऐसा ही माननेसे अनेक पण्डितों (विद्वानों) की एकवाक्यता भी होती है । यहाँपर समय विषय जटिल तथा नीरस निर्णय जो बंगला तथा अंग्रेजी ग्रंथोंमें है वह न लिखकर सार लिख दिया है । इससे "जयदेव चरित" आदि बङ्गला ग्रंथोंमें जो जयदेवकविका समय तेरहवीं वा चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रामाणिक होकर निश्चय

हुआ कि जयदेवकवि ग्यारहवीं शताब्दीके आदिमें उत्पन्न हुए हैं। जयदेव कविकी बाल्यावस्था का वर्णन सविशेष कुछ नहीं प्राप्त है। अत्यन्त छोटी अवस्थामें यह मातृ-पितृ-विहीन हो गये थे, यह अनुमान होता है। क्योंकि विष्णुस्वामिकृत चरितामृतके अनुसार श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें इन्होंने उसी सम्प्रदाय के किसी पण्डितसे विद्या पढ़ी थी। इनके विवाहका वर्णन तो अत्यन्त विचित्र है। एक ब्राह्मणने अनपत्य होनेके कारण श्री जगन्नाथजीकी बड़ी आराधना करके कन्यारत्न लाभ किया था। इस कन्याका नाम पद्मावती था। जब यह कन्या विवाह-योग्य हुई तो श्री जगन्नाथजीने स्वप्नमें उसके पिताको आज्ञा दी, हमारा भक्त जयदेवकवि अमुक पेड़के नीचे वास करता है, उसे तुम अपनी कन्या दे दो। विप्र कन्या लेकर जयदेवकविके ससीप आया। यद्यपि जयदेव-कविने अपनी अनिच्छा प्रकट की तथापि देवादेशानुसार विप्र उस कन्याको उनके समीप छोड़कर चला गया। जयदेवकविने जब उस कन्या से पूछा कि 'तुम्हारी क्या अभिलाषा है।' तो पद्मावतीने कहा--'आजतक मैं पिताकी आज्ञामें थी अब मैं आपकी दासी हूं, ग्रहण करिये वा परित्याग करिये; मैं आपका दासत्व न छोडूंगी'। जयदेवकविने उस कन्याके मुखसे ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न होकर उसके साथ परिणय कर लिया। अनेक लोगों का मत है कि जयदेवकविने पूर्वमें एक विवाह किया था। उस स्त्रीकी मृत्युके शोकसे खिन्न होकर पुरुषोत्तम क्षेत्रमें रहने लगे। पद्मावती उनकी दूसरी स्त्री थी। इन्हीं पद्मावतीके समय संसारमें आदरणीय कवितारत्नका निकष गीतगोविन्द काव्य जयदेवकविने रचा। गीतगोगिन्दके सिवा जयदेवकविकी अन्य कोई कविता नहीं मिलती। 'प्रसन्नराघव','पक्षधरो', 'चन्द्रालोक' तथा 'सीताविहार' काव्य विदर्भ-नगरवासी कौण्डिन्य गोत्रोद्भवमहादेव पण्डितके पुत्र दूसरे जयदेवकविके रचे हुए हैं जिनका काव्यमें पीयूषवर्ष तथा न्यायमें पक्षधर उपनाम था। वरञ्च कई विद्वानोंका मत है कि तीन जयदेवकवि हुए हैं यथा--१ गीतगोविन्दकार। २ प्रसन्नराघवकार। ३ चन्द्रालोक-रचयिता जिनका नामान्तर पीयूषवर्ष है। पद्मावतीके परिणयके पश्चात् जयदेवकवि अपने स्थापित इष्टदेवकी सेवा-निर्वाहार्थ द्रव्य एकत्र करनेकी इच्छासे तथा तीर्थाटव एवं धर्मोपदेशकी रुचिसे निजदेश छोड़कर बाहर निकले। श्रीवृन्दावनकी यात्रा करके जयपुर वा जयनगर होते हुए जयदेवजी मार्गमें चले जाते थे कि डाकुओंने धनके लोभसे उनपर आक्रमण

किया तथा केवल धन ही नहीं लिया अपितृ उनके हाथ-पांव भी काट दिये, कहते हैं कि किसी धार्मिक राजाके कुछ नौकर लोग इसी रास्तेसे जाते थे। उन लोगोंने जयदेवकविकी यह दशा देखी तथा अपने राज्यमें उन्हें उठा ले गये। वहां औषध आदिसे इनका शरीर कुछ स्वस्थ हुआ। इसी अवसरपर वे डाकू भी उस नगरमें आये तथा साधुवेषमें उस राजाके यहां उतरे। तव राजाके घरपर जयदेवकविका बड़ा मान था तथा दान-धर्म भी इन्हींके द्वारा होता था, जयदेवकविने इन साधु वेषधारियोंको अच्छी रीतिसे पहचान लिया तथा यदि वे चाहते तो भलीभांति अपना बदला चुका लेते, परन्तु उनके सहज, उदार एवं कृपालुचित्तमें इस बात का ध्यानतक न आया, अपितु दानादिक देकर उनका बड़ा सम्मान किया। विदाके समय भी उन्हें बड़े सत्कारसे अच्छी विदाई देकर विदा किया, तथा राजाके दो भृत्य साथ कर दिये कि अपनी सीमातक उन्हें पहुँचा आवें। मार्गमें उन डाकुओंसे राज्यानुचरोंने पूछा कि इन महात्माने अन्य लोगोंसे अधिक आपका आदर क्यों किया। इसपर उन चाण्डाल डाकुओंने कहा—जयदेवकवि प्रथम एक राजाके यहां रहते थे। इन्होंने कुछ ऐसा दुष्कर्म किया कि राजाने हम लोगोंको प्राण हरनेकी आज्ञा दी परन्तु दयावश हमने इनके प्राण न लिए, केवल हाथ-पाँव काट कर छोड़ दिया, इसी बात को छिपानेके लिए जयदेवकविने हमारा इतना आदर किया। कहा जाता है कि मनुष्योंकी आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्यापवादको न सह सकी तथा द्विधा विदीर्ण हो गयो। वे डाकू सब उसो गर्त्तमें समा गये तथा परमेश्वरकी कृपासे जयदेवकवि के हाथ-पाँव पुनः पूर्ववत् हो गये। सेवकों द्वारा यह समाचार सुनकर तथा जयदेवकविसे पूर्ववृत्त ज्ञातकर राजा अत्यन्त विस्मित हुआ। आश्चर्य-घटना—अविश्वासी-विद्वानोंका मत है कि जयदेवकवि ऐसे सहृदय थे कि उनके स्वभावपर मुग्ध होकर लोगोंने यह गल्प कल्पित कर दी है। तत्पश्चात् जयदेवकविने अपनी स्त्री पद्मावतीको भी बुला लिया। कहते हैं कि एक बार उस राजाकी रानीने ईर्ष्याके वश पद्मावतीकी परीक्षा करनेको उससे कह दिया कि 'जयदेव कवि मर गये'। उस समय जयदेवकवि राजाके साथ कहीं बाहर गये थे। पतिभक्ता पद्मावतीने यह सुनते ही प्राण परित्याग कर दिये। जब जयदेवकवि आये तथा उन्होंने यह चरित देखा तो श्रीकृष्णनाम सुना कर उसे पुनर्जीवन दिया किन्तु उसने उठकर कहा कि अव आप मुझे आज्ञा दीजिये।

मेरा इसीमें कल्याण है कि मैं आपके सामने परम-धाम जाऊँ तथा उसने पुनः शरीर त्याग दिया। जयदेवकवि इस कारण उदास होकर अपनी जन्मभूमि केन्दुली ग्राम चले गये तथा शेष जीवनतक वहीं रहे।

श्री जयदेवकविके गीतगोविन्दके जोड़पर गीत-गिरीश नामक एक काव्य बना है किन्तु जो बात इसमें है वह उसमें सपनेमें भी नहीं है। गीतगोविन्दके कई टीकाकार हुए हैं, यथा--उदयन गोवर्द्धनाचार्यका शिष्य था तथा जयदेव कविसे भी कुछ पढ़ा था, एक टीका उसकी बनाई है। इसके बाद कई टीकाएँ बनी हैं। उदयनकी टीका जयदेवकविके सामने बन चुकी थी एवं इसमें भी संशय नहीं कि गीतगोविन्द जयदेवकविके जीवनमें ही समस्त संसारमें प्रचलित हो गया था। गीतगोविन्द दक्षिणमें अधिक गाया जाता है तथा बालाजीमें सीढ़ियोंपर द्रविड़ लिपिमें खुदा हुआ है। श्रीवल्लभसम्प्रदायमें इसका विशेष महत्त्व है अपितु आचार्यके पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजीकी इसकी प्रथम अष्टपदीपर एक रसमय टीका भी बड़ी रोचक है जिसमें दशावतारका वर्णन शृङ्गारपरक लगाया है। वैष्णवोंमें प्रणाली है कि अयोग्य स्थलमें गीतगोविद नहीं गाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहाँ गीतगोविन्द गाया जाता है वहाँ भगवान्‌का अवश्य प्रादुर्भाव होता है। इसपर वैष्णवोंमें एक आख्यायिका प्रसिद्ध है। एक वृद्धाको गीतगोविन्दकी 'धीर समीरे यमुनातीरे' यह अष्टपदी याद थी। वह गोबर्द्धनके नीचे किसी ग्राममें रहती थी। एक दिन वह बैगनके खेतमें पेढ़ोंको सींचती थी तथा अष्टपदी गाती जाती थी। इससे कृष्ण उसके पीछे-पीछे फिरे। श्रीनाथजीके मन्दिरमें जब तीसरे प्रहर उत्थापन हुआ तो गोस्वामीजीने देखा कि श्रीनाथजीका बागा फटा है तथा बैगनके काँटे तथा मिट्टी लगी हुई है। इसपर भगवान्‌से जब पूछा गया तो पता लगा कि अमुक वृद्धाने गीतगोविन्द गाकर मुझे बुलाया इससे कांटे तथा मिट्टी लग गयी क्योंकि वह गाती थी तथा जहाँ-जहाँ जाती थी मैं उसके पीछे फिरता था, तबसे गोस्वामीजीने यह आज्ञा वैष्णवोंमें प्रचारित की कि कुस्थलपर कोई गीतगोविन्द न गावे। किंवदन्ती है, कि जयदेवकवि प्रतिदिन गङ्गास्नानके लिए जाते थे। उनका यह परिश्रम देखकर गङ्गाजीने कहा--तुम इतनी दूर क्यों श्रम करते हो मैं तुम्हारे घर आऊँगी। इसीसे अजयनद नामक एक धारमें गङ्गा अभीतक केंदुली ग्रामके नीचे बहती हैं।

जयदेवकवि वैष्णव सम्प्रदायमें एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदायकी मध्यावस्थामें इनका नाम मुख्य रूप से लिया गया है, यथा--

विष्णुस्वामी समारम्भां जयदेवादि मध्यगा ।
श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तां स्तुमो गुरुपरम्पराम् ।।

जयदेवकविका पवित्र शरीर केंदुली ग्राममें समाधिस्थ है। यह सामाधिस्थान मनोहर लताओंसे वेष्टित होकर अपनी सुन्दरतासे अद्यापि जयदेवकविके सुन्दर चरित्रका तथा चित्तका परिचायक है।

जयदेवकवि अत्यन्त कारुणिक तथा धार्मिक थे। भक्तिपूर्ण महत्त्व छटा तथा अनुपम प्रीति-व्यञ्जक उदार-भाव ये दोनों उनके अन्त:करणमें निरन्तर प्रतिभाषित होते थे।

उन्होंने अपने जीवनका अर्द्ध समय उपासना तथा धर्म-चर्चामें बिताया। वैष्णवसम्प्रदायमें इनके ऐसे धार्मिक तथा सहृदय पुरुष विरले ही हुए हैं। जयदेवकवि एक सत्कवि थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। यद्यपि कालिदास, भवभूति, भारवि आदिसे वह बढ़कर कवि नहीं थे पर उनकी अपेक्षा इनको सामान्य भी नहीं कह सकते। बङ्गालमें तो ऐसा सत्कवि कोई आजतक हुआ ही नहीं। ललितप्रद-विन्यास तथा श्रुतिमनोहर अनुप्रासछटा-निबन्धसे जयदेवकवि की रचना अत्यन्त ही चमत्कारिणी है। मधुरपद-विन्यासमें बड़े-बड़े कवि इनसे निस्सन्देह हारे हुए हैं। जयदेवकविका प्रसिद्ध ग्रन्थ गीतगोविन्द बारह सर्गोंमें विभक्त है जिसमें पूर्वमें श्लोक तथा फिर गीत क्रमसे रखे हैं। इस ग्रन्थमें परस्पर विरह, दूती, मान, गुणकथन तथा नायकका अनुनय तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है। जयदेवकवि परम वैष्णव थे इससे उन्होंने जो कुछ वणन किया है प्रगाढ़ भक्तिपूर्ण होकर वर्णन किया है। इन्होंने इस काव्यमें रसमयी रचनाशक्ति तथा आकर्षक सद्भावशालित्वका एकवेष प्रदर्शन किया है। पण्डितप्रवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वप्रणीत संस्कृत विषयक प्रस्तावमें लिखते हैं— "इस महाकाव्य गीतगोविन्दकी रचना जैसी मधुर, कोमल तथा ललित है उस तरहकी दूसरी कविता संस्कृत भाषामें बहुत कम है। अपितु ऐसे मनोहर पद-विन्यास, श्रवण-ललित अनुप्रासछटा तथा प्रसाद गुण अन्य स्थलमें कहीं नहीं"। वास्तव में रचना-विषयमें गीतगोविन्द एक अपूर्व ग्रन्थ है। तथा ताल तो मानो चातुर्थ

एवं अनेक रागोंके नामके अनुकूल गीतोंमें अक्षरसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जयदेवकवि बहुत अच्छे गानवेत्ता थे। ऐसा भी कहा जाता है कि गीतगोविन्द को कुछ लोग अष्टपदी तथा अष्टतालसे पुकारते हैं।

कई विद्वानोंने लिखा है कि गीतगोविन्द राजा विक्रमादित्यकी सभामें गाया जाता था। परन्तु यह बात सर्वथा अश्रद्धेय है। यह कोई अन्य ही विक्रम होगे जिनकी सभामें गीतगोविन्द गाया जाता था क्योंकि शकारि विक्रम के कई सौ वर्षके बाद जयदेवकविकी उत्पत्ति हुई। हां, कर्णाट, कलिङ्ग प्रभृति देशके राजाओंकी सभामें पूर्वमें अवश्य गीतगोविन्द गाया जाता था। कहा जाता है कि 'प्रिये चारुशीले' इस अष्टपदीमें "स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं" इस पदके आगे जयदेवकविकी इच्छा हुई कि 'देहि पदपल्लवमुदारञ्च' ऐसा पद रखें परन्तु, ईश्वरके लिए ऐसा पद रखनेमें उनका साहस नहीं हुआ। इससे पुस्तक छोड़कर आप स्नान करने चले गये। भक्तवत्सल, भक्तमनोरथपूरक भगवान् इस समय स्नानसे फिरते हुए जयदेवकविके घरपर आये। प्रथम पद्मावतीने जो रसोई तैयार की थी उसे ग्रहण की तत्पश्चात् पुस्तक खोलकर "देहि पदपल्लवमुदारम्" लिखकर शयन करने लगे। इतनेमें जयदेवकवि आये तो देखा कि पतिव्रता पद्मावती जो विना जयदेवकविके भोजनके जलतक नहीं पीती थी वह भोजन कर रही है। जयदेवकविने कारण पूछा। पद्मावतीने आश्चर्यसे सब वृत्तान्त कहा। इसपर जयदेवकवि ने जाकर पुस्तक देखी तो "देहि पदपल्लवमुदारम्" यह पद लिखा है, वह जान गये कि यह सब चरित उसी रसिकेन्द्र शिरोमणि भक्तवत्सल भगवानका है इससे आनन्दसे गद-गद होकर पद्मावतीकी थालीका प्रसाद लेकर अपनेको कृतकृत्य माना। कहते हैं कि पुरीके राजा सात्विकरायने ईर्ष्याके वशीभूत होकर जयदेवकी कविताकी भांति एक अपना नवीन गीतगोविन्द रचा। इस झगड़ेको निबटानेके लिए कि कौन गीतगोविन्द अच्छा है दोनों गीतगोविन्दोंको पण्डितोंने जगन्नाथमन्दिरमें रखकर बन्द कर दिया। जब यथासमय द्वार खुला तो लोगोंने देखा कि जयदेवकविका गीतगोविन्द जगन्नाथजीके हृदयपटलपर लगा हुआ है तथा राजाका दूर पड़ा हुआ है। तब यह देखकर राजा आत्महत्या करनेके लिए उद्यत हुआ, इसपर जगन्नाथजीने उसको समुचित धैर्यके लिए आज्ञा दी कि हमने तुम्हारा भी स्वीकार किया अफसोस मत करो। गीतगोविन्द अंग्रेजी गद्यमें सर विलियम

जोन्स कृत तथा पद्यमें आरनडलसाहब कृत एवं लैटिनमें लासिनकृत, जर्मनमें स्कार्टकृत इसी रीतिसे कई भाषाओंमें कई लोगों द्वारा कृत तथा अनूदित हुआ है। हिन्दीमें गद्यानुवाद छोड़कर इसके तीन पद्यानुवाद हैं प्रथम राजा डालचन्द्रकी आज्ञा से रामचन्द्र नागर कृत, द्वितीय अमृतसरके सुप्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरिदासकृत तथा तृतीय बाबू हरिश्चन्द्र 'भारतेन्दु' कृत। इनके अलावा द्रविड, कर्णाटकादिमे भी इसके कई अनुवाद हैं। लोग कहते हैं कि जयदेवकविने गीतगोविन्दके अतिरिक्त एक ग्रन्थ 'रतिमंजरी' भी बनाया था परन्तु यह बात निर्मूल है। गीतगोविन्दकारकी लेखनीसे रतिमंजरी-सा जघन्य काव्य निकले यह कभी सम्भव नहीं है। गङ्गाकी स्तुतिमें जयदेवकविका रचा हुआ एक सुन्दरपद अधिक मिलता है वह उनका रचा हुआ हो तो हो। इस भांति कई शताब्दी हुई कि जयदेवकवि इस भूमण्डलको छाड़कर परमधाम चले गये। किन्तु अपनी कवित्वशक्तिसे आज भी हमारे समाजमें वे सादर स्थित हैं। इसके स्मरणर्थ केंदुलीग्राममें अबतक मकर संक्रान्तिके दिन एक बड़ा भारी मेला होता है जिसमें सत्तर अस्सी हजार वैष्णव एकत्रित होते हैं तथा इनकी समाधिके चारों ओर गाते बजाते हुए संकीर्तन करते हैं। भक्तवत्सलकी सदा जय। इति।



॥ श्रीः ॥

गीतगोविन्दकाव्यम्

'इन्दु' नामक हिन्दी व्याख्याविभूषितम्



प्रथमः सर्गः

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यमास्तमालद्रुमै-
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे ! गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

एकदा भगवान् कृष्ण तथा राधा एवं उनके सखा तथा सखियां किसी उपवन में भ्रमण कर रहे थे जब सन्ध्या हुई तब नन्द ने कहा—"अयि राधे ! आकाश मेघों से घिर गया है, यह विपिन-पथ भी तमाल-तरुओं से व्याप्त होने से धूमिल हो रहा है, ये कृष्ण रात में अकेले डरते है, अतः तुम इनकी पथ-प्रदर्शिका बनकर इन्हें गृह पर पहुँचा दो।

नन्द की सम्मति के अनुसार राधा, कृष्ण की पथप्रदर्शिका बन कर उन्हें गृह पहुँचाने चली। मार्ग में यमुना-तट पर के उपवनों तथा लताकुञ्जों की शोभा एवं वृक्षों की रमणीय छटाएँ साथ ही एकान्त की ललितक्रीडाएँ बड़ी सुखद हुई। भगवान् कृष्ण की उन क्रीडाओं की सदा जय हो ॥ १ ॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत-
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

जिनका चित्त पवित्र—सरस्वती जी के चरित्र से ओत-प्रोत है, जो राधिका के चरणसेवियों में श्रेष्ठ हैं, वे जयदेव कवि यह प्रबन्ध रचते हैं जिसमें श्रीकृष्ण की रासलीला-सम्बन्धी रसपूर्ण कथाएँ हैं ॥ २ ॥

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कूतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

यदि आपका अन्तःकरण हरि-चर्चा की ओर लालायित है तथा आपके कान हरि की सुललित लीलाओं को श्रवण करना चाहते हैं तो अति मधुर तथा मनोहर एवं सुललित पदरचनावली जयदेव कवि की पदावली सुनिये ॥ ३ ॥

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाध्यो दुरूहद्रुतेः ।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धन-
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ॥ ४ ॥

कवि उमापतिधर पदरचना अच्छी करते हैं, अर्थात्—उनकी रचना गौरव-मयी नहीं होती । शरणकवि केवल अर्थगाम्भीर्यमयी रचना करते हैं। गोवर्द्धनाचार्य केवल शृङ्गार रस की रचना अच्छी कर सकते हैं, अर्थात् शृङ्गार रस में उनसे कोई साम्य नहीं कर सकता । धोयी कवि एक बार श्रवण से केवल स्मरणमात्र रख सकते हैं, अर्थात् अर्थ-बोध नहीं कर पाते । शब्द तथा अर्थ-गाम्भीर्यमयी रचना (सन्दर्भ-शुद्धि) तो जयदेव कवि ही कर सकते हैं ॥ ४ ॥

मालवरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १ ॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव ! धृतमीनशरीर, जय जगदीश ! हरे ॥ ध्रुव० ॥ १ ॥

हे मत्स्याकृतिधारण करनेवाले, केशव ! आपने प्रलयकाल में बिना प्रयास के समुद्र में मछली के रूप को धारण किया, अतः हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ १ ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव ' धृतकच्छपरूप, जय जगदीश हरे ! ॥ २ ॥

हे कूर्माकृतिधारिन् ! आपने पीठ पर अति विपुल पृथिवी को धारण किये, जिससे आपकी पीठ पर चिह्न भी पड़ गये, अतः, हे हरे, जगदीश ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव ! धृतशूकररूप जय जगदीश ! हरे ! ॥ ३ ॥

हे शूकररूपधारिन्, केशव ! आपके दाँतों के अग्रभाग में चिपकी हुई यह वसुधा चन्द्र-कलङ्क की शोभा की तरह दिखलायी पड़ती है अतः, हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव ! धृतनरहरिरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ४ ॥

हे नृसिंहावतारधारिन्, केशव ! आपके करकमलों में विचित्र नाखून हैं जिनसे हिरण्यकशिपु के शरीररूपी भ्रमर का विदारण हुआ है, अतः, हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव ! धृतवामनरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ५ ॥

हे वामनावतारधारिन् ! आपने विचित्र वामनावतार धारण किया, जिससे बलि को छला तथा निजपदकमल के नाखूनों के नीर से (गङ्गाजल से) इस लोक को पवित्र किया, इसलिए हे जगदीश, हे हरे ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव ! धृतभृगुपतिरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ६ ॥

हे परशुरामरूपधारिन् ! आपने परशुरामावतार धारण करके क्षत्रियों के रक्त से संसार को स्नान कराकर संसार के पापों का शमन किया, अतः, हे हरे, हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम्
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव ! धृतरामशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ७ ॥

हे केशव ! आपने इन्द्रादि दशों दिक्पालों के प्रीत्यर्थ राक्षसपति रावण के दश शीशों को, युद्ध में, बलि-प्रदान किया । अतः हे हरे, हे रामचन्द्र-रूपधारिन् ! आपकी जय हो ॥ ७ ॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ।
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव धृतहलधररूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ८ ॥

हे केशव ! आपने अपनी सुन्दर देह पर मेघ के सदृश वस्त्र धारण किये हैं जो हल से डर कर आयी हुई यमुनातुल्य दिखलायी पढ़ते हैं । अतः, हे हलधारिन् ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥

नन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्
सदयहृदय-दर्शितपशुघातम् ।
केशव ! धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ९ ॥

हे केशव ! आपने जिन यज्ञों में पशुहिंसा है, उनकी निन्दा की, अतः, हे बुद्धरूपधारिन्, जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव ! धृतकल्किशरीर, जय जगदीश हरे ॥ १० ॥

हे केशव ! आपने म्लेच्छो के नाश करने के लिए[1] धूमकेतु के समान विचित्र रूप धरा । अतः, हे कल्कि (कलङ्की) अवतारधारिन्, जगदीश ! आपकी जय हो ॥ १० ॥

---

१. धूमकेतु को हिन्दी में पुच्छल तारा भी कहते हैं ।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।
केशव ! धृतदशविधरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥११॥

हे दशविधरूपधारिन्, केशव ! आपकी जय हो । हे भक्तो ! जयदेवकविरचित सुखप्रद मनोहर तथा कल्याणकर भव का तत्त्वरूप यह स्तोत्र (गीतगोविन्द) सुनिये, इससे परम सुख होगा ॥ ११ ॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥१॥

हे केशव ! मत्स्यावतारधर वेदरक्षक ! कूर्मरूपधारिन्, हे रामरूप धारण कर राक्षस-राज रावण का वध करनेवाले ! हे वामनावतार से बलि को छलनेवाले ! हे परशुरामावतार से क्षत्रियों का नाश करनेवाले ! हे कल्कि अवतार से म्लेच्छों का संहार करनेवाले ! भगवान् कृष्ण ! आपको प्रणाम है ॥१॥

गुर्जररागे प्रतिमण्ठताले अष्टपदी गुर्जरोनिःसृततालाभ्यां गीयते ॥१॥

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे कमलाकुच-आश्रयधारिन् ! हे कुण्डलधारिन् ! हे कोमल पुष्पमाल्यधारिन् ! हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥१॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस ! जय जय देव हरे ॥ २ ॥

हे सूर्यमण्डल के अलंकार ! हे संसार के दुःखहारिन् ! हे ऋषिजनों के चित्तरूपी सरोवर के हंस ! हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥२॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

हे कालिय नामक सर्प के मदनाशक ! हे आनन्दवर्धक ! हे यदुकुलरूपी कमल के सूर्य, हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

हे मधु, मुर, नरक आदि दैत्यों के नाशक ! हे गरुड़वाहन ! हे देवक्रीड़ा के आदिकारण ! हे देव, हरे आपकी जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए।
त्रिभुवनभवननिदान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

हे निर्मल कमलपत्रतुल्य-नेत्रधारिन् ! हे सांसारिक बन्धनों से छुड़ानेवाले ! हे त्रिलोकीरूपभवन के आदिकारण, हे देव हरे ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे जनकसुता से विभूषित ! हे खरदूषणवधकर्त्ता ! हे युद्ध में रावणवधकारिन् ! हे देव ! हरे ! आपकी जय हो ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

हे नवीन मेघ के सदृश उज्ज्वल वेषधारिन् ! हे लक्ष्मीमुखरूपीचन्द्रचकोर-रूप ! हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥ ७ ॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय-जय देव हरे ॥ ८ ॥

हे हरे ! हम आपके चरण में प्रणाम करते हैं, हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिए, हे देव ! हरे ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

जयदेवकविकृत यह मंगलगान मनन व पठन करनेवालों को आनन्दप्रद हो, हे हरे, देव ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न-
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य।
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेद-
स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

लक्ष्मी के आलिङ्गन से उनके कुचों पर की केसर कृष्ण के वक्ष:स्थल में लग गयी, वही मानो, प्रत्यक्ष प्रेम है अथवा लक्ष्मी ने, भगवान् के पटल पर मोहर कर दी कि बिना उनकी (लक्ष्मी की) आज्ञा के उसका स्पर्श अन्य रमणियां न करें। ऐसी रतिक्रीड़ा से उत्पन्न पसीने से युक्त श्री कृष्ण का हृदय आपका मंगल करे ॥ १ ॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै—
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
चलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

वसन्त ऋतु में माधवी पुष्पों से भी अधिक मृदु शरीरवाली, श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे शून्यवन में पर्यटन करती हुई तथा कामज्वर से उत्पन्न चिन्ता की विकलता से अत्यन्त व्याकुल राधा से उनकी कोई सखी परिहास में बोली ॥ २ ॥

वसन्तरागेण यतितालेन गीयते ॥ ३ ॥

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ १ ॥

हे राधे! सुन्दर लौंग की लताओं से स्पर्शित, धीरे-धीरे बहते हुए मलयसमीर के सहित, भौरों की अवली से गुञ्जित एवं कोयलों की कूजन से कूजित कुञ्जवाले तथा वियोगियों को क्लेशित करनेवाले इस वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण तरुणी गोपियों के साथ नाचते तथा गाते हैं ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥ वि० २ ॥

उन्मत्त करनेवाली रतिकामना से पथिकों की अंगनाओं को विलापयुक्त करानेवाले (वसन्त में प्रवत्स्यत्पतिकाएँ विलखती हैं) तथा मौलसिरी के पुष्पों पर भ्रमरों को भ्रमित करानेवाले वसन्त में श्रीकृष्ण युवतियों के साथ आमोद-प्रमोद कर रहे हैं ॥ २ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ।।वि० ३।।

कस्तूरी की सुगन्ध का अनुकीर्तन करनेवाले, तमाल के नूतन पत्तों से सुशोभित तथा तरुणों के हृदयों को विदीर्ण करनेवाले कामदेव के नाखून के समान लाल-लाल पलाश के पुष्पों से प्रफुल्लित वसन्त में श्री कृष्ण कामिनियों के साथ रमण करते हैं ।। ३ ।।

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ।
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे ।।वि० ४।।

कामदेव के सुवर्ण दण्डवाले छत्र के सदृश कान्तिमान एवं विकसित नाग-पुष्पों से सुशोभित तथा कामदेव के तरकस में भरे हुए बाण के समान प्रतीत होनेवाले भौंरों से आच्छन्न गुलाब के फूलों से युक्त वसन्त में श्रीकृष्ण युवती गोपांगनाओं के साथ नृत्य तथा रतिक्रीड़ा कर रहे हैं ।। ४ ।।

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ।।वि० ५।।

नवीन वरुणवृक्ष, निर्लज्ज जगत को देखने के लिए, मानो मनुष्यों को विकसित करके हास्य कर रहे हैं तथा केतकी के पुष्प विरहीजनों को नोचने के लिये भाले की नोक की तरह एवं बर्छी के समान हो रहे हैं ऐसे वसन्त में श्रीकृष्ण युवतियों के साथ भोग विलास कर रहे हैं ।। ५ ।।

माधविकापरिमलललिते वनमालिकयातिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ।।वि० ६।।

माधवीलता की मुग्ध सुगन्ध से अति रमणीय, नूतन मालती तथा चमेली के सुमनों से सुगन्धित, मुनियों के भी मन को मोहनेवाले तथा युवकों के स्वाभाविक मित्र वसन्त ऋतु में गोपिकाओं के साथ श्रीकृष्ण नृत्यपूर्वक विहार कर रहे हैं ।। ६ ।।

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ।।वि० ७।।

विकसित माधवीलताओं के आलिङ्गन से प्रफुल्लित एवं पुलकित आम्रवृक्षों

से सुशोभित यमुना के जल से घिरे हुए पवित्र भूमिवाले वृन्दावन में वसन्त के समय श्रीकृष्ण तरुणियों से रमण कर रहे हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥वि० ८॥

श्रीकृष्ण के चरणों के स्मरण का सारभूत, जयदेव रचित कामदेव के विलासयुक्त तथा सरस वसन्त का यह वर्णन संसार में विस्तृत होवे ॥ ८ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग-
प्रकटितपटवासैर्वासयन्काननानि ।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १ ॥

अर्धप्रस्फुटित चमेली के पुष्पों से प्रादुर्भूत परागरूप पटवास से विपिनों को गन्धवान् करता हुआ, केवड़े के फूलों का मित्र यह समीरण कामदेव के वाण के समान वियोगियों का सन्तप्त कर दे रहा है ॥ १ ॥

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ २ ॥

आम की मञ्जरियों से बाहर निकलते हुए रस-लोलुप भौंरों से कंपायी गयी आम की मञ्जिरियों पर कूंजन करनेवाली कोयल के मनोहर मधुरालापों से कानों में व्याकुलता उत्पन्न करनेवाले वसन्त के इन दिनों को एकाग्र चित्त से मुहूर्त्त मात्र अपने अन्तःकरण में प्राण-प्रिया के समागम-सुख के स्मरणमात्र से विरहीजन येन-केन-प्रकारेण व्यतीत कर रहे हैं ॥ २ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रम-
स्फुरन्मनोहारि विलासलालसम् ।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ
सखी समक्षं पुनराह राधिकाम् ॥ ३ ॥

अनेकों रमणियों के विलास के लोलुप कृष्ण को समीप से जाते हुए, दूर से ही इशारे से ही बतलाती हुई कोई सखी राधा से कहने लगी ॥ ३ ॥

रामकरीरागे यतितालाभ्यां गीयते ॥ ४ ॥

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली ॥
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे ॥ध्रु०१॥

हे प्रियम्वदे, राधे ! चन्दन-चर्चित नीले शरीरवाले, पीताम्बर तथा वनमाला पहिने एवं क्रीड़ा के कारण चञ्चल रत्न जड़े कुण्डलों से सुशोभित गालों पर मन्द-मन्द मुसकान धारण करनेवाले श्रीकृष्ण क्रीड़ासक्त गोपियों के समूह में बिहार कर रहे हैं ॥ १ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् ।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ॥ हरिरिह० ॥ २ ॥

हे राधिके ! कोई गोपी उन्नत स्तनों के भार से प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण का आलिंगन करती हुई उनके स्वर के बाद स्वर देकर उच्चस्वर में गा रही है ॥२॥

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥ हरिरिह० ॥३॥

हे राधे ! कोई-कोई गोपी चञ्चल नेत्रों के कटाक्षों के कामोत्पादक सञ्चार से श्रीकृष्ण के मुखारबिन्द का अधिक ध्यान करती है ॥ ३ ॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥ हरिरिह० ॥ ४ ॥

हे राधिके ! किसी सुन्दर जघनवाली गोपी ने कान में कुछ कहने के बहाने श्रीकृष्ण के रोमाञ्चित गालों को बड़ी निपुड़ता से चूम लिया ॥ ४ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले ॥ हरिरिह० ॥५॥

हे प्रिये ! किसी गोपी ने यमुना तट पर सुहावनी वेतसलता के कुञ्ज में शृंगार क्रीड़ा करने की कामना से श्रीकृष्ण के वस्त्र को खींचा ॥ ५ ॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥हरिरिह० ॥ ६ ॥

हे राधे ! एक गोपी ने श्रीकृष्ण के साथ नाचती हुई तथा ताल देती हुई

उनकी वंशी की ध्वनि में अपने कङ्कणों की लय मिला दी, इस पर श्रीकृष्ण ने उसकी प्रशंसा की ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मितचारुपरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥ हरिहरि० ॥ ७ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण किसी गोपी का आलिंगन करते हैं, किसी का चुम्बन करते हैं, किसी के साथ विहार करते हैं, किसी को मृदु-मृदु मुस्कानपूर्वक देखते हैं और किसी-किसी के पीछे अनुसरण करते हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकलितरहस्यम् ।
वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥ हरिरिह० ८ ॥

जयदेवकविरचित वृन्दावन की भगवान् की यह रासलीला भक्तों को सुखदायक तथा यशदायक होवे ॥ ८ ॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर:
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभित: प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृंङ्गार: सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥ १ ॥

हे सखि ! प्रेम तथा अनुरागवश समस्त संसार को आनन्दित करते हुए, नीलकमलों के सदृश कोमल अङ्गों से कामदेव के उत्साह को प्रोत्साहित करते हुए एवं चारो ओर अपने इच्छानुसार व्रजांगनाओं से आलिंगित अंगोंवाले मूर्त्तिमान शृंगार के समान श्रीकृष्ण वसन्त में क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ १ ॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचल-
म्प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिल: ।
किञ्चित्स्निग्धरसालमौलिकुसुमान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहु: कुहूरिति मुहुस्तारा. पिकानां गिर: ॥ २ ॥

हे राधिके ! इस वसन्त में मलयपर्वत का यह पवन, मानो चन्दन-वृक्षों पर स्थित सर्पों के मुखों में जाने के कारण पीड़ित होकर बरफ में स्नान करने के लिए हिमालय की ओर जा रहा है तथा कोमल-कोमल आम एवं बकुल की मंजरियों को देख कर कोकिलाएँ आनन्दविह्वल होकर 'कहू-कूहू' का लधुर एवं मनोहर गीत गा रही हैं ॥ २ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवा-
मभ्यर्णं परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया।
साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ३ ॥

इति गीतगोविन्दकाव्ये सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः ॥

रासक्रीड़ा के आनन्द से विभ्रमयुक्त गोपियों के सम्मुख ही प्रेम-विह्वला राधा ने प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए एवं "आपका सुन्दर मुख अमृतमय है" ऐसा कहते हुए गीत-प्रशंसा के छल से श्रीकृष्ण के मुख को दृढ़ता के साथ चूम लिया। इस भाँति की चुम्बन-निपुणता पर मन्द मुस्कान द्वारा चित्त को चुरानेवाले श्रीकृष्ण आपका मंगल करें ॥ ३ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द के सामोददामोदर नामक पहले सर्ग की
इन्दु टीका समाप्त हुई।



द्वितीयः सर्गः

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः।
क्वचिदपि लताकुंजे गुजन्मधुव्रतमण्डली-
मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम् ॥१॥

जब श्रीकृष्ण सभी गोपिकाओं के साथ एक-सा प्रेम करते हुए वृन्दावन में रासलीला करते थे उस समय राधा अपने सौभाग्य को बीता हुआ जानकर ईर्ष्या के कारण एक ऐसी लताकुञ्ज में जा छिपीं, जहाँ वृक्षों की शाखाओं तथा लताबल्लियों पर मधुपावली गुंजायमान हो रही थी और करुणार्द्र चित्त से एकान्त में अपनी प्रियसखी से कहने लगीं ॥ १ ॥

गुर्जररागेण यतितालेन गीयते।

सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशं
चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम्।

रासे हरिमिह विहितविलासं
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ १ ॥

हे सखि ! मधुर ध्वनि से परिपूरित तथा अधरामृत से भी बढ़ कर ललित एवं सर्वलोक को मोहनेवाली वंशी के वादक, कटाक्ष करनेवाले, वंशी बजाते समय चंचल मुकुट तथा किरीट को धारण करनेवाले, विलासी एवं मेरे साथ हास-परिहास करनेवाले श्रीकृष्ण को मेरा हृदय चाहता है ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदियसुवेशम् ॥ रासे० २ ॥

हे सखि ! कई इन्द्रधनुषों के समान, सुन्दर चित्रवर्णवाले मोरपंखों से अपने केशों को अवेष्टित करके सजाने के कारण मेघमंडल के समान प्रतीत होनेवाले कृष्ण को मेरा चित्त चाहता है ॥ २ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्भितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम् ॥ रासे० ३ ॥

हे सखि ! गोपजनों की वधुओं के मुख चूमने के लोभी, दुपहरिया के फूल के समान लाल लाल ओष्ठरूपी पल्लवों पर मंद मंद मुसकान से सुशोभित मुखवाले श्री कृष्ण का मैं ध्यान करती हूँ ॥ ३ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ।
करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥ ४ ॥

हें सखि ! बड़ी तथा नवीन पत्तों की भाँति पुलकित भुजाओं से हजारों गोपांगनाओं का आलिंगन करनेवाले तथा हाथ-पाव एयं छाती पर धारण किये हुए रत्नों के आभूषणों से बिखरती हुई ज्योति से अन्धकार का अपहरण करनेवाले कृष्ण को मेरा मन चाहता है ॥ ४ ॥

जलदपटलचदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम् ।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ५ ॥

मेघ की घटाओं के वींच सुशोभित चन्द्रविनिन्दक चन्दन का तिलक ललाटपर धारण करनेवाले तथा गोपियों के उन्नत कूचों के प्रान्त भागों के मर्दन करने में कठोर छातीवाले, कृष्ण का मैं चित्त से स्मरण करती हूँ ॥ ५ ॥

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।
पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ॥ रासे० ६ ॥

पन्ना आदि मणियों से युक्त मगर की आकृति का कुण्डल धारण करने के कारण उनकी प्रभा से सुशोभित कपोलवाले, पीताम्बरधारी तथा ऋषि, मनुष्य देवता और दैत्य आदि अनुचरों से अनुगत श्री कृष्ण का मैं अन्तःकरण से ध्यान करती हूँ ॥ ६ ॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।
मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥ रासे० ७ ॥

भव्य कदम्ब के नीचे उपस्थित, कलियुगी पापों के भय को दूर करनेवाले एवं कटाक्षादि तथा हृदय से मेरे साथ रमण करनेवाले श्री कृष्ण का मैं ध्यान करती हूँ ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम् । रासे० ८ ॥

जयदेव कवि-विरचित, अत्यन्त सरस तथा आकर्षक, श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करनेवाला यह काव्य श्रीकृष्ण के चरणों को स्मरण करनेवाले पुण्यात्माओं को आनन्दप्रद होवे ॥ ८ ॥

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परीतोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः ।
युवतिषु चलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम् ॥ १ ॥

हे सखि ! अन्यांगनाओं में सदा स्नेह करनेवाले तथा मेरे विना रासलीला रचनेवाले कृष्ण को ही मेरा यह अवश चित्त चाहता है। मैं क्या करूँ ? यह कृष्ण के गुणों का ही कीर्तन करता है, भूल से भी उन्हें भूलने की अभिलाषा नहीं करता, अपितु उन्हीं की प्रशंसा श्रवण कर हर्षान्वित होता है ॥ १ ॥

मालवरागेण एकतालीतालेन गीयते ॥ ६ ॥

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम् ।
चकितविलोकितसकलदिशा रतिरभसभरेण हसन्तम् ।

सखि हे केशिमथनमुदारं

रमय मया सह मदनकनोरथभावितया सविकारम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे सखि ! एकान्त लतागृह में आयी हुई तथा बार-बार इधर-उधर देखनेवाली, मेरे साथ रात के समय एकान्त में छिपकर स्थित होनेवाले तथा रति के उत्साह से मन्द-मन्द हँसने वाले केशी के शत्रु उदारचरित कामातुर कृष्ण को क्रीडा करा दो ॥ १ ॥

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम् ।

मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥ सखि० २ ॥

हे सखि ! प्रथम समागम की तरह लज्जा के वशीभूत होतेवाली मन्द तथा मधुरभाषिणी (जो मैं हूँ) मुझसे, बड़ी पटुता के साथ अनेकों प्रशंसनीय वाक्यों को बोलनेवाले तथा मेरी जाँघ पर की साड़ी हटानेबाले कृष्ण को मिला दो ॥ २ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्

कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ॥ सखि० ॥ ३ ॥

हे सखि ! कोमल-कोमल नवीन पत्तों की शय्या रचनेवाली तथा आलिंगन करके प्रिय को चूमनेवाली मुझसे, मेरे वक्षःस्थल पर दीर्घ समय तक शयन करनेवाले तथा मेरा आलिंगन करके अधरोष्ठ का पान करनेवाले श्रीकृष्ण को मिला दो ॥ ३ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ।

श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥ सखि० ॥ ४ ॥

हे सखि ! रतिजनित आनन्द द्वारा उत्पन्न आलस्य से आँखो को मींचने वाली तथा रति के परिश्रम से निकलते हुए पसीने से भींगी देहवाली मेरे साथ रोमाञ्च से सुन्दर गाल वाले एवं कामदेव के मद से भी अधिक चञ्चल श्रीकृष्ण का रमण करा दो ॥ ४ ॥

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।

श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ॥ सखि ॥ ५ ॥

हे सखि ! रति के समय कोयल की वाणी के समान शब्द करनेवाली तथा रतिपरिश्रम से ढीली-ढाली फूलों से गूँथी हुई अलकावलीवाली मेरे साथ

कामदेव के नियम (तन्त्र) को जोतनेवाले तथा कठोर कुचों पर नख-क्षत करनेवाले श्रीकृष्ण का रमण करा दो ॥ ५ ॥

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।
मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥ सखि० ॥ ६ ॥

हे सखि ! रति के समय पैरों में पड़े हुए आभूषणों में जड़े घूँघरूओं को झङ्कारनेवाली तथा करधनी के घूंघरू आदि को बजानेवाली मेरे साथ, रतिक्रीड़ा को विस्तार से परिपूर्ण करनेवाले तथा मेरे जूड़े को खींच कर चुम्बन लेनेवाले, श्रीकृष्ण का रमण करा दो ॥ ६ ॥

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ।
निःसहनिपतितनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥ सखि० ॥ ७ ॥

हे आलि ! रति-सुख के समय उसके रस से अलसाई हुई, अशक्ता तथा मुर्झायी हुई देहरूपी लतावाली मेरे साथ, अर्धस्फूटित नयनरूपी कमलों को मूँदनेवाले तथा जागृत कामदेव वाले मधुसूदन का रमण करा दो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ॥ सखि० ॥ ८ ॥

जयदेवकवि वर्णित श्रीकृष्ण का रति वर्णन करनेवाला उत्कण्ठिता गोप-वन्धुओं से कहा हुआ यह काव्य आपको सुख देवे ॥ ८ ॥

हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिवद्बल्लवी-
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ।
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधामुग्धाननं कानने
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥ १ ॥

हे सखि ! मुझे देख कर जिनके हाथों से मोहनी वंशी गिर पड़ी, तिरछी चितवनवाली गोपिकाओं से कटाक्ष किये गये गोपाङ्गनाओ से परिवेष्टित, पसीने से गीले-गीले गालवाले मुझे देख कर लज्जायुक्त हँसी हँसनेवाले, श्रीकृष्ण को मैं देख रही हूँ तथा आनन्दित हो रही हूँ ॥ १ ॥

दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।

अपि भ्राम्यद् भृङ्गीरणितरमणीयानमुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि ! शिखरिणीयं[1] सुखयति ॥ २ ॥

हे सखि ! ये नवीन-नवीन अशोक लताओं के छोटे-छोटे गुच्छों का विकास देखना भी दुःखद है, यह देखो, तलाव के उपवनों का पवन मी सता रहा है, ये आम्रवृक्षों की मञ्जरियों पर जो भ्रमरियाँ गा रही हैं वह मी दुःश्राव्य है ॥ २ ॥

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्द्धदृष्टस्तनम् ।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य दयितं काञ्चिच्चिरं चिन्तय-
न्नन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अक्लेशकेशवो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

साभिप्राय मुसकानेवाली, अस्त-व्यस्त केशपाशवाली, सुन्दर भौंहरूपी लतावाली, व्याज से भुजाक्षेप के द्वारा स्तनों को दिखाने वाली गोपिकाओं के भावों को देख कर किसी रमणी का दीर्घकाल तक स्मरण (ध्यान) करनेवाले मधुर तथा चितचोर युवा केशव आपके क्लेश हरें ॥ ३ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के अक्लेशकेशव सर्ग की "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥



तृतीयः सर्गः

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

विश्व की वासनाओं को बाँधनेवाली, शृङ्खलारूपी राधा को अपने हृदय में रख कर कंस के रिपु श्रीकृष्ण ने अन्य व्राजाङ्गनाओं को त्याग दिया ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका-
मनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः ।

---

१. शिखरिणी छन्द का लक्षण भी है, यथा-रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी-
तटान्तकुञ्जे निषसाद माधवः ॥ २ ॥

माधव, इतस्ततः अनेक स्थलों में राधा का अन्वेषण करके काम-बाणों से उद्वेजित चित्त होकर, पश्चात्ताप करते हुए, यमुना किनारे लतागृह में जा बैठे ॥२॥

गुर्जररागेण यतितालाभ्यां गीयते ॥ ७ ॥

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ।
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

अत्यन्त खेद है कि वह राधा मुझे युवतियों के मण्डल में देख कर मानभंग के भय से कोप करके चली गयी, मैं भी दोषी था, अतः उसे भय के कारण, रोक भी न सका ॥ १ ॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।
किं धनेन धनेन किं मम किं गृहेण सुखेन ॥ हरि० ॥ २ ॥

कुपिता वह राधा दीर्घवियोग से न जाने क्या करेगी, क्या कहेगी ? हन्त ! अब उसके बिना धन, जन, गृहादि सभी सुख वृथा है ॥ २ ॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु रोषभरेण ।
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताऽकुलं भ्रमरेण ॥ ३ ॥

अत्यन्त रोष के कारण टेढ़ो भौंहवाली, घूमते हुए भौंरायुक्त लाल कमल के समान उस राधा के मुखारबिन्द का ध्यान करता हूँ ॥ ३ ॥

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि ।
किं वनेनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि ॥ हरि० ॥४॥

यदि मैं उस हृदयहारिणी राधा पर अत्यन्त अनुराग रखता हूँ तो बन में क्यों अनुसरण करूँ ? क्यों वृथा विलाप करूँ ? ॥ ४ ॥

तन्वि ! खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि ।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥ हरि०॥५॥

हे तन्वि ! मैं अनुमान करता हूँ कि आपका मन ईर्ष्या के कारण क्षुब्ध हो गया है, किन्तु, यह नहीं जानता था कि आप कहाँ गयीं थी ? जिससे आपका अनुनय करता ॥ ५ ॥

दृश्यसे पूरतो गतागतमेव मे विदधासि ।
किं पुरेव ससंभ्रमं परिरंभणं न ददासि ॥ हरि० ॥ ६ ॥

हे राधिके ! आप गमनागमन करती हुई मुझे दीखती हैं फिर भी पूर्व की भाँति जल्दी से आलिङ्गनादि क्यों नहीं देतीं ? ॥ ६ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ।
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥ हरि० ॥७॥

हे सुन्दरि ! क्षमा कीजिए, तथा दर्शन दीजिये, अब ऐसा अपराध कभी न करूँगा, मैं काम-पीड़ित हो रहा हूँ ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन ।
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ हरि० ॥८॥

भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणतिपूर्वक सागर से उत्पन्न चन्द्रमा के समान किन्दुबिल्वकुल में उत्पन्न जयदेव कवि ने इसका वर्णन किया ॥ ८ ॥

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि
वाणा गुणा: श्रवणपालिरिति स्मरेण ।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-
मस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १ ॥

हे कामदेव ! आपने भृकुटीरूप धनुष, चञ्चल कटाक्षरूपी वाण, कर्णपालि-रूपी धनुष की डोरी आदि अपने शस्त्रों को जिनसे संसार वश में होता है, चलती-फिरती जयलक्ष्मी रूपी राधा को क्यों दिये ? [सम्भव है इसलिए कि वह मेरे ऊपर प्रहार करे 'इति ध्वन्यते] ॥ १ ॥

हृदि विलसते हारो नायं भुजङ्गमनायक:
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युति: ।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्याऽनङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥ २ ॥

हे कामदेव ! हमारे हृदय पर यह माला है, इसे सर्पराज न समझिये, हमारे गले में यह कमलदलों की पाँति है, इसे विष की चमक न समझिये, हमारे शरीर में यह चन्दन का लेप है, इसे आप भस्म न समझिये । मैं प्रिया-

विरही हूँ अतः उक्त वस्तुएँ तापहरणार्थ हैं, इनकी भ्रान्ति से मुझे शिव समझ कर मेरे ऊपर वृथा प्रहार न करिये ॥ २ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्व मूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज प्रेक्षत्कटाक्षनल-
ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥ ३ ॥

हे कामदेव ! आप इन आमों की मञ्जरी रूपी बाणों को हाथों में न धारण कीजिये, क्योंकि—हे विश्व को खेल-खेल से जीतनेवाले मनोभव ! मूर्च्छित पुरुष को मारने से क्या ? देखिये, उस मृगनयनी राधा के कामवाणरूपी कटाक्षाग्नि की ज्वाला से जला हुआ मेरा चित्त अभी तक स्वस्थ नहीं हुआ। (मेरे को मारने से क्या लाभ ?) ॥ ३ ॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कवरीभारोपि मारोद्यमम् ।
मोहं तावदयं च तन्वि ! तनुतां बिम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तस्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥ ४ ॥

हे कृशाङ्गि ! आपके भृकुटीरूपी धनुष पर नियोजित बाण मुझे मार्मिक व्यथा पहुँचावे तो पहुँचावे। यह श्याम तथा कुटिल केशकलाप कामदेव को उद्दीपित करे तो करे, कुन्दरू के समान अधरोष्ठ राग बढ़ावे तो, बढ़ावे, किन्तु सुन्दर तथा गोल-गोल (सद्वृत्त) आपके ये कुच क्यों मेरे प्राण को जला रहे हैं ? ॥४॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलस्निग्धा दृशोर्विभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्पन्दी गिरां वक्रिमा ।
सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासंगेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हन्त विरहव्याधिः कथं वर्तते ॥ ५ ॥

वही स्पर्श सुख, वही सुधामयी वाणी, वही कुन्दरू के समान अधर की मधुरता सभी बातें पूर्ववत् हैं। मेरा मन भी उसी राधा में लगा है, तथापि मालूम नहीं यह विरहव्यथा क्यों बढ़ रही है ॥ ५ ॥

तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्-
गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः ।
संमुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु-
स्पन्दं पल्लविताश्चिरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ ६ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये 'मुग्धमधुसूदनो' नाम तृतीयः सर्गः ।

बजती हुई बाँसुरी के ललित पदों के श्रवण से अन्याङ्गनाओं द्वारा अलक्षित, राधा के सुन्दर मुखरूपी चन्द्र में अप्रकट भाव से धीरे-धीरे बढ़ाई हुई गरदन को तिरछी करने से चञ्चलायमान हो गये हैं मुकुट एवं कुण्डल जिनके ऐसे कृष्ण की कटाक्षावलि आपको आनन्दकारिणी हो ॥ ६ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के मुग्धमधुसूदन सर्ग की "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

चतुर्थः सर्गः

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी ॥ १ ॥

यमुनातट की वेतसलताकुञ्ज मे उदास बैठे हुए तथा प्रेम-बाहुल्य से उद्विग्न चित्तवाले माधव से राधिका-सखी कहने लगी ॥ १ ॥

कर्णाटकरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ ८ ॥

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ।
सा विरहे तव दीना
माधवमनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ध्रु०१॥

हे माधव ! कामदेव के बाणों के भय से वह राधा मानो आप में लीन हो गयी है, तथा विरह-व्यथा से अतिक्षीण हो गयी है । वह चन्दन की निन्दा करती है, चन्द्र-किरण को अधीर होकर कष्टकारिणी समझती है, मलय समीर को सर्प-गृह से आने के कारण विष के समान मानती है ॥ १ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ॥सा० २॥

हे माधव ! वह राधा लगातार लगने वाले कामबाणों के भय से अपने हृदय में बसने वाले आपकी रक्षा के लिए अपने हृदय के मर्मस्थल पर जल से भिगाये कमलपत्र का वर्म (बख्तर) धारण करती है ॥ २ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥सा०३॥

हे माधव ! विरहिणी वह राधा, तुम्हारा आलिङ्गन सुख प्राप्त करने की अभिलाषा से कामदेव के बाणभूत पुष्पों की विलास-कला परिपूर्ण, कमनीय शय्या का सहारा लेकर एक प्रकार से व्रत कर रही है ॥ ३ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम् ॥सा०४॥

हे माधव ! वह राधा भयंकर राहु के दाँतों से दलित चन्द्र से वहती हुई सुधाधारा के समान, निरन्तर बहते हुए अश्रु जल से पूर्ण नेत्र वाले मुखारविन्द को धारण करती है ॥ ४ ॥

विलखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ।
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥ सा० ५॥

हे मायापते ! वह राधा कामदेव की आकृति के समान आपकी आकृति एकान्त में कस्तूरी से लिखती है तथा आकृति के नीचे एक मगर की आकृति रचती है एवं आपकी आकृति के हाथ में आम का बाण लिखतो है, फिर उस आकृति को प्रणाम करती है ॥ ५ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव ! तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥ सा० ६ ॥

कभी-कभी इधर-उधर भ्रमण करती हुई वह राधा बार-बार कहती है, हे माधव ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, आपके वियोग से अमृतनिधि चन्द्र भी मुझे दाह देता है ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम् ॥ सा० ७॥

व्रतादि से प्राप्त होनेवाले हे माधव ! विरहिणी वह राधा, चित्त में आपका ध्यान करके आपकी मूर्ति की कल्पना अपने सम्मुख करके कभी हँसती है, कभी रोती है, कभी दुःखी होती है, कभी विलखती है और कभी सन्ताप करना त्याग देती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ।
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥ सा० ८ ॥

जयदेव कवि के काव्य का यदि अधिक आनन्द लेना हो तो कृष्ण-विरहिणी राधा की सखी के वचनों को पढ़िये ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त ! हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडितम्[1] ॥ १ ॥

हे कृष्ण ! आपकी विरह-व्यथा से राधा को भवन वन के समान, प्रिय सखियों का साथ जाल के समान तथा दीर्घविश्वास से प्रदीप्त विरहाग्नि उसे और सता रही है । अत्यन्त खेद है कि वह राधा आपके विरह के कारण कामदेवरूपी शेर से संत्रस्त, जो उसके लिए यमराज बना हुआ है, हरिणी-सी प्रतीत हो रही है कि बहुना, अब उसकी अन्तावस्था है ॥ १ ॥

देशाख्य एकतालीताले अष्टपदी ॥ ९ ॥

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् ।
सा मनुते कृशतनुरतिभारम् ॥
राधिका विरहे तव केशव माधव वामन विष्णो ॥ध्रु० १॥

हे कृष्ण ! वह कृशशरीरधारिणी राधा, आपके वियोग से अपने उरोजों पर धारण किये हुए हार को भी अत्यन्त भारस्वरूप मानती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

---

१ शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण भी है—
यथा—सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

हे गोविन्द ! वह राधा आपकी वियोग रूपी व्यथा से शरीर पर लगे सरस तथा चिकने चन्दन के लेप में भी तापशमन न होने के कारण विष की शंका करती हैं ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

हें कृष्ण ! वह राधा आपके वियोग में दीर्घ निश्वासों को गरम कामाग्निके समान धारण करती है ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।
नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

हे मुरारे ! विरहिणी वह राधा टूटे हुए कमलदण्ड की भाँति अपने नेत्र-कमलों से अश्रुवर्षा करती हुई प्रत्येक दिशाओं में आपको देखने की चेष्टा कर रही है ॥ ४ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ।
कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

हे वासुदेव ! आपके वियोग में राधा नेत्रों के सम्मुख बिछी हुई किसलयों की शय्या को अग्निशय्या समझती है ॥ ५ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ।
वालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

हे मुरारे ! सन्ध्या समय राधा, आपके विरह में हथेलो पर गालों को धरे हुए सायंकालीन निश्चल बालचन्द्र के समान दीखती है ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ॥
विरहविहितमरणेव निकामम् । राधिका० ॥ ७ ॥

हे नाथ ! आपके वियोग से राधा मृत्यु को प्राप्त होते हुए प्राणी के समान कामनापूर्वक "हरिः हरिः" जप रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ।
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

भगवान् कृष्ण के चरणों में समर्पित जयदेव कवि का यह गीत सुखद हो ॥ ८ ॥

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात्
स्ववैंद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥ १ ॥

हे स्वर्ग[1] के वैद्यतुल्य, कृष्ण ! वह राधा रोमाञ्चित होती हैं, शी--शी करती है, बिखलती है, काँपती है, गिरती है. ध्यान करती है, मूर्च्छित होती है, खड़ी होती है, इस प्रकार उसे कामज्वर सता रहा है, तो (शृंगारादि के उपचार) आपके रस[2] से क्या जी नहीं सकती ! अपितु, जी सकती है । अन्यथा, अधुना जो हाथ आदि के संकेत से वह बोलती है वह भी बन्द हो जायगा । अर्थात् आपके बिना वह मर जायगी ॥ १ ॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम् ।
विमुक्तबाधां कुरुषे न राधा-मुपेन्द्रवज्रादपि[3] दारुणोसि ॥ २ ॥

हे देववैद्य के सदृश श्रेष्ठ ! कृष्ण ! उस राधा का सारा रोग केवल आपके आलिङ्गन रूपी अमृत से ही अच्छा हो सकता है, यदि आप ऐसा नहीं करते तो यही कहना पड़ेगा कि आप वज्र से भी अधिक कठोर हैं ॥ २ ॥

कन्दर्पज्वरसंज्वराकुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति ।
किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥ ३ ॥

कामज्वर से व्याकुल तथा कृश शरीर वाली राधा का चित्त चन्दन, चन्द्र कमलिनी का ध्यान करते ही सन्तप्त हो उठता है, यह आश्चर्य है कि शीतल देह वाले एक आप ही का ध्यान करती हुई वह एकान्त में क्षान्ति के वशीभूत येन केन प्रकारेण जीवित है इस अवस्था में केवल आप ही उसे शीतलता प्रदान कर प्रकारेण जीवित है इस अवस्था में केवल आप ही उसे शीतलता प्रदान कर सकते हैं ॥ ३ ॥

---

१ स्ववैंद्य=अश्विनीकुमार ।

२ रस शब्द से एक पक्ष में शृंगार रस, अपर पक्ष में सुवर्णादिरस जानना चाहिये, क्योंकि इस श्लोक के दो अर्थ होते हैं ।

३ उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण भी है । यथा-उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम्[१] ॥ ४ ॥

हे माधव ! जिस राधा को पूर्व में, नेत्रों के पालक गिरने में भी आपके दर्शन की बाधा से, खेद होता था वही राधा प्रफुल्लित आम की शाखाओं को देख कर चिरविरह को कैसे सह सकती है ॥ ४ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनवशादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्वल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।
कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये स्निग्धमाधवो नाम चतुर्थसर्गः ॥ ४ ॥

वर्षा से व्याकुल गोकुल की रक्षा के लिए गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़ कर धारण करने वाले, व्रजवनिताओं द्वारा सुखपूर्वक दीर्घ काल तक चुम्बित, काम के वशीभूत होकर१ गोपियों द्वारा रखे गये अधरों से लाल-लाल मुद्रा भुजाओं के ऊपर धारण करने वाले, गोप वेषधारी, कंस के शत्रु, भगवान् कृष्ण आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के स्निग्धमाधव नामक सर्ग की "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।



पञ्चमः सर्गः

अहमिह निवसामि याहि राधामनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।
इतिमधुरिपुणा सखी नियुक्ता स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥ १ ॥

---

१ पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण है । यथा—अयुजि नयुगरेफतो यकारी युजि च न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

२ गोपाङ्गनाओं ने अपने लाल-लाल अधरों को कृष्ण की भुजाओं पर धरा वही लाल रंग मानो, उन भुजाओं पर मुद्रित हो गया ।

श्रीकृष्ण ने राधा की सखी से कहा—"मैं इसी कुञ्ज में बैठा हूँ, आप जाकर मेरी ओर से राधा को समझा-बुझाकर यहाँ पर ले आइये" वह सखी राधा से जाकर पुनः बोली ॥ १ ॥

देशवराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १० ॥

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रुव० ॥ १ ॥

हे राधे! कामदेव को सहायक मानकर मलय पवन के बहने से तथा विरही जनों के हृदयों के विदारणार्थ पुष्पों की कलियों के खिलने से, हे सखि! आप के विरह से वनमाली पीड़ित हैं ॥ १ ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ।
पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति ॥ तव विर० ॥ २ ॥

हे सखि! जिस समय चन्द्र निज किरणों से श्रीकृष्ण को जलाता है, उस समय श्रीकृष्ण मृत्यु की व्यथा के सदृश पीड़ित होते हैं, तथा जब कामदेव उनके ऊपर तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण चलाता है तब वे दुःख से अत्यन्त विकल हो उठते हैं ॥ २ ॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपि दधाति ।
मनसि चलितविरहे निशि-निशि रुजमुपयाति ॥ तव० ३ ॥

हे प्रिये! कानों में भ्रमरध्वनि न सुनायी दे इसलिए श्रीकृष्ण भ्रमरों के झङ्कार के समय अपने कानों को बन्द कर लेते हैं, तथा जब आपका स्मरण आ जाता है तब उन्हें अत्यन्त कष्ट होता है। हृदय में आपके स्मरण से उनकी व्यथा प्रति रात्रि बढ़ती जा रही है ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम ।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम ॥ तव० ॥ ४ ॥

हे सखि! आपके विरह में श्रीकृष्ण घोर जंगल में रहते हैं, पृथिवी पर ही सोते हैं, किं बहुना, आपका नाम लेकर बार-बार विलाप करते हैं ॥ ४ ॥

रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।
हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति ॥ तव० ॥ ५ ॥

हे सखि ! कोयलों का झुण्ड जब "कूहू-कूहू" करके बोलता है तब श्रीकृष्ण चारों ओर उन्मत्त की भाँति दौड़ते हैं इस पर जब लोग उन पर हँसते हैं, तब श्रीकृष्ण विरह को फटकार कर कहते हैं "तुम मत हो" ॥ ५ ॥

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।
तव रतिसुखविभवे बहुगणयति गुणमतीव ॥ तव० ६ ॥

हे सखि ! पक्षियों के कलरव को श्रवण करके कृष्ण को तुम्हारी सुरीली वाणी का स्मरण आ जाता है, तथा आपके रति आनन्द का अनुभव होते ही वे रतिसुख का बार-बार गुणगान करते हैं ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।
तमपि जपति सरस परयुवतिषु न रतिमुपैति ॥ तव० ७ ॥

हे सखि ! जब कोई प्राणी आपके नाम के तुल्य शुभदायक वैशाख मास का नाम लेता है तब कृष्ण उसे अति प्रेम के साथ सुनते तथा जपते हैं, किसी अन्य युवतियों के साथ में रतिभाव भी नहीं करते ॥ ७ ॥

भणति कविजयदेवे विरहविलसितेन
मनसि रभसविभवे हरिरुद्रयतु सुकृतेन ॥ तव० ८ ॥

इस प्रकार से श्रीकृष्ण-वियोगरूपी वर्णन से आनन्दयुक्त जयदेवकवि के अन्तःकरण में पुण्य से श्रीकृष्ण प्रकट हों ॥ ८ ॥

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलिं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ १ ॥

हे राधे ! जिस निकुञ्ज में प्रथम आपके साथ कृष्ण ने कामदेव की सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, आज भी कृष्ण उसी कामदेव के महातीर्थ कुञ्ज में बैठ कर दिन-रात आपका ही चिन्तन करते हुए, आपके नामाक्षरों से युक्त मन्त्रों को जपते हैं, तथा आपके कलशतुल्य स्तनों के निर्भर आलिङ्गनरूपी अमृत की अभिलाषा करते हैं ॥ १ ॥

गुर्जररागेण एकतालीताले अष्टपदी ॥११॥

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।
गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ध्रु० १॥

हे प्रिये ! गोपियों के उन्नत स्तनों का चञ्चलता पूर्वक मर्दन करने वाले वनमाली, यमुना किनारे जहाँ पर मन्द-मन्द पवन चल रहा है, बैठे हैं। अत: हे नितम्बिनि ! रति के तत्त्ववेत्ता[1] अभिसार में बैठे हुए, कामदेव सदृश सुन्दर छविधारी अपने प्राणेश के सन्निकट चलने में विलम्ब न करिये ॥ १ ॥

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।
बहुमनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥धी० २॥

हे सखि ! आपके नाम का संकेत कर करके श्रीकृष्ण मधुर ध्वनि से वंशी बजा रहे हैं, तथा आपके शरीर का स्पर्श कर जो धूलि, पवन द्वारा उड़ कर उन तक पहुँच रही है, उसके स्पर्श से अपने को कृत-कृत्य समझते हैं ॥ २ ॥

पतपि पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥धी० ३॥

हे राधे ! पक्षियों के उड़ने के शब्द से तथा पत्तों की खड़-खड़ाहट से श्रीकृष्ण आपके आगमन की सम्भावना से चौकन्ने होकर आप का आगमन-मार्ग देखने लगते हैं, तथा शय्या सजाने लगते हैं ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम् ।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम् ॥धी० ४॥

हे प्रिये ! बहुत बजनेवाले अधीर एवं रात्री के समय चञ्चल इन नूपुरों को यहीं छोड़ कर नीले वस्त्र धारण कर घोर अन्धकारवाली कुञ्ज में चलिये ॥ ४॥

उरसि मुरारे रुपहितहारे घन इव तरलबलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥धी० ५॥

हे पीतवर्णे ! राधे ! मेघों में बकुल पंक्ति के समान मालाओं से सुसज्जित

---

१ अभिसार = संकेत-स्थान

तथा पुण्य से उपलब्ध श्रीकृष्ण के वक्ष-स्थल पर बिपरीत रति करके बिजली की तरह चमकिये ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ।
किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिधानम् ॥धी० ६॥

हे प्रिये ! कोमल-कोमल पत्तों के ऊपर सोने वाले, कमल-नयन श्रीकृष्ण के ऊपर वस्त्र तथा करधनी उतार कर निधि के समान आनन्दप्रद जांघ को मिलाइये ॥ ६ ॥

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥धी० ७॥

हे राधे ! हरि अभिमानी हैं तथा यह रात भी व्यतीत हो रही है, अतः मेरे समझाये हुए वचनों को शीघ्र कीजिये तथा श्रीकृष्ण की अभिलाषा पूरी करिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥धी० ८॥

श्रीकृष्णसेवी जयदेवकविकृत इन गीतों द्वारा परमादरणीय, दयालु, सुन्दर एवं प्रसन्न चित्तावाले, कृष्ण को सज्जनवृन्द प्रमाण करें ॥ ८ ॥

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥१॥

हे कान्ते ! कामपीड़ित आपके प्रिय बार-बार निश्वासें ले रहे हैं पुनः पुनः दिशाओं की ओर अवलोकन करते हैं, बार-बार कुन्ज में आते-जाते हैं, भूयो-भूयः शय्या की रचना करते हैं तथा अधीरता से इतस्ततः देखते हैं ॥ १ ॥

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तङ्गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम् ।
कोकानां करुणस्वरेण सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थंना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रभ्यौऽभिसारक्षणः ॥२॥

हे राधे ! देखिये, आप की वक्रता के साथ ही सूर्य भी अस्त हो गया, कृष्ण के मनोरथ के साथ-साथ यह अँधेरा भी प्रगाढ़ हो गया, चकवा-चकवी के करुण विलाप के समान आपकी लम्बी प्रार्थना भी समाप्त हो गयी, अब शीघ्र चलिये, देर न करिये क्योंकि छिपकर चलने का यही समय है ॥ २ ॥

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तजात्
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रातयोः ।
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योर्निशि को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः ॥ ३ ॥

हे सखि ! स्त्री तथा पुरुष के बताये हुए परस्पर सङ्केतस्थान पर अँधेरे में मिलने से एक दूसरे को पहिचान न सकने के कारण वार्तालाप से ही अन्योन्य का बोध होता है, परन्तु इसके पूर्व ही क्रमशः आलिङ्गन, चुम्बन, कुचस्पर्श, नखक्षत, कामोद्दीप्ति तत्पश्चात् रति आरम्भ होने के साथ ही परस्पर परिचय प्राप्त होनेपर लज्जा-विमिश्रित रस से प्रेमी-प्रेमिका को कौन से सुख नहीं मिलते ॥ ३ ॥

सभयचकितं विन्यस्यन्ती दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरुमुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ।
कथमपि रहःप्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥ ४ ॥

हे सखि ! अँधेरे के कारण भय से चारों ओर देखनेवाली वृक्षों के नीचे बार-बार ठहर-ठहर कर धीरे-धीरे पैरों को बढ़ानेवाली, जिसके सम्पूर्ण शरीर में कामदेव व्याप्त हो रहा है ऐसी आप को सङ्केत-स्थल में पाकर सौभाग्यशाली श्रीकृष्ण कृतकृत्य होवें ॥ ४ ॥

राधामुग्धमुखारबिन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्देऽभिसारिकावर्णने साकांक्षपुण्डरीकाक्षो
नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

राधा के सुन्दर मुखरूप कमल के मधुप, तीनों लोकों के मुकुटस्वरूप, वेषरचनार्थ नीलमणि के समान, पृथ्वी का बोझ हलका करनेवाले, व्रजाङ्गनाओं के चित्त को प्रमुदित करने के लिए प्रदोषरूप, कंस के विनाश करने में धूमकेतु तारे के समान देवकीनन्दन आप का कल्याण करें ।। ५ ।।

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के साकांक्षपुण्डरीकाक्ष नामक पञ्चम सर्ग की "इन्दु" टीका समाप्त हुई ।।

षष्ठः सर्गः

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ।। १ ।।

अनन्तर गमन करने में असमर्थ तथा बहुकाल से अनुरागिणी राधा को लतागृह में देखकर काम से व्याकुल श्रीकृष्ण से एक सखी ने राधा-चरित कहा ।। १ ।।

गुणकरीरागेण रूपकताले अष्टपदी ।। १२ ।।

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् ।
त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तम् ।
नाथ हरे जय नाथ हरे सीदति राधा वासगृहे ।। ध्रु० ।। १ ।।

हे नाथ ! एकान्त में बैठी हुई वह राधा शून्यभाव से प्रति दिशाओं में आप को देखने की चेष्टा करती हुई, आप के द्वारा अधरपान की कल्पना कर विरह-व्यथा से केलिगृह में तड़प रही है । उसकी रक्षा कीजिए ।। १ ।।

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ।
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ।। नाथ हरे० ।। २ ।।

हे कृष्ण ! राधा ज्योंही वेग से आप के समीप आने लगती हैं त्यों ही दो-चार कदम चलकर गिर पड़ती हैं ।। २ ।।

[इस श्लोक में राधा की क्षीणता दिखायी गयी है कि वह आपके वियोग में कितनी निर्बल हो गयी हैं ।। २ ।।]

विहितविशदबिसकिसलयवलया ।
जीवति परमिह तव रतिकलया ।। नाथ हरे० ।। ३ ।।

हे हरे ! कमलनाल के नवीन अंकुरों का वलय पहिननेवाली वह राधा आपकी रतिकला का स्मरण करके ही जीवित हैं ॥ ३ ॥

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ।
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथ हरे० ॥४॥

हे नाथ ! एकान्त में वह राधा (अत्यन्त अनुराग से आप ही का रूप [कुण्डलादि] धारण कर) पुनः-पुनः अपने आभूषणों की शोभा निहारती हैं, तथा "मैं ही कृष्ण हूँ" इस प्रकार की भावना करती है ॥ ४ ॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ नाथ हरे० ॥५॥

हे भगवन् ! वह राधा अपनी सखी से बार-बार कहती है, "हरि अभिसार (संकेत स्थान) में जल्दी से क्यों नहीं आये ?" ॥ ५ ॥

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥ नाथ हरे० ॥६॥

हे मधुरिपो ! वह राधा मेघ के समान प्रगाढ़ अन्धकार को देखकर आप ही (कृष्ण) को आया हुआ समझ कर आलिंगन तथा चुम्बन करती हैं ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ।
विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ नाथ हरे० ॥७॥

हे कंसरिपो ! आपके विलम्ब करने से वासकसज्जा[1] की भाँति राधा निर्लज्ज होकर रोती तथा विलखती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथ हरे० ॥८॥

जयदेवकविकृत यह गीत रसिकजनों के लिए आनन्ददायक होवे ॥ ८ ॥

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ।
तव कितव ! विधायामन्तकन्दर्पचिन्तां
रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥१॥

हे कितव ! वह मृगनयनी, आपका ध्यान करने वाली तथा श्रृंगारादि रस-

---

१. केलिगृह में सुन्दर शय्या लगाकर अलंकारों से सजी हुई प्रियतम की प्रतीक्षा करनेवाली नायिका वासकसज्जा कही जाती है ।

रूपी समुद्र में डुबकी लगानेवाली राधा, कभी (ध्यान करते समय) अति हर्ष के साथ रोमांचिता हो उठती है, कभी शी-शी करती है और कभी जड़त्व के प्रादुर्भाव होने से व्याकुल होने लगती है ॥ १ ॥

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायती ।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलालाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ॥२॥

हे कृष्ण ! पत्रों तक की खड़-खड़ाहट सुनकर वह राधा अपने अंगों में आभूषणों को पहिनने लगती है, ऐसा समझकर कि आप आ रहे हैं, वे शय्या को सजाने लगती हैं एवं ध्यानमग्न होकर अनेकों विचारों को करने लगती हैं, परन्तु बिना आपके उनकी रात नहीं कटती ॥ २ ॥

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने[1] भाण्डीरभूमीरुहि
भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम् ।
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः । ३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने सोत्कण्ठधन्यवैकुण्ठो
नाम षष्ठः सर्ग ॥६॥

हे पथिक ! इस भाण्डोर वृक्ष के नीचे क्यों विश्राम करते हो ? यहाँ पर कृष्ण-सर्प का निवास है। क्यों भाई, आपको नन्दबाबा का भवन नहीं दिखलाइ पड़ता ? जहाँ पर कि सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इस प्रकार से राधा द्वारा कहे हुए वचनों को पथिक-मुख से श्रवण कर नन्दबाबा के सम्मुख उन वचनों को छिपानेवाले श्रीकृष्ण ने पथिक से कहा—"आइये आप का स्वागत है" इत्यादि वचनों को कहकर वह बात उड़ा दी। श्रीकृष्ण से कथित वाणी जय-युक्त हो ॥ ३ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के सोत्कण्ठधन्यवैकुण्ठ नामक षष्ठ सर्ग की "इन्दु" टीका समाप्त हुई।

---

१. 'कृष्णभोगिभवने' पद से यह श्लोक श्लिष्ट हैं इससे यह प्रतीति होती है कि उसी पेड़ के नीचे उन लोगों का संकेतस्थल भी था।

सप्तमः सर्गः

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपात-
सञ्जातपातक इव स्फुटलांछनश्रीः ।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजाले-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनविन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

इसी समय व्यभिचारिणी अङ्गनाओं के मार्गों को रोकने के पाप से स्पष्ट कलङ्कित तथा पूर्वदिशारूपी महिला के चन्दन-बिन्दु (मण्डलाकार) के सदृश, चन्द्र ने अपनी किरणों से वृन्दावन को देदीप्यमान कर दिया ॥ १ ॥

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा ।
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥ २ ॥

चन्द्रमण्डल के फैलने पर, श्रीकृष्ण के आने में देर होने के कारण वह विरहिणी राधा, अनेकों भाँति से जोर-जोर से विलाप करने लगी ॥ २ ॥

गौडमालवरागे यतिताले अष्टपदी ॥ १३ ॥

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ॥
यामि हे [१] कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ॥ ध्रु० ॥१॥

राधा कहती है---कथित समय पर भी कृष्ण वन में नहीं आये, यह रमण योग्य (रति के योग्य) मेरा यौवन भी वृथा है, जब सखियों से (जो कि सदा-विश्वासपात्री होती हैं) ही ठगी गयी, तो फिर अब मैं किसकी शरण में रहूँ, अतः जलाश्रय लेना ही उचित है । (अर्थात्—डूब मरना चाहिए) ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ।
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥ यामि० ॥ २ ॥

जिन श्रीकृष्ण के लिए मैंने रात्रि में गहन वन में वास किया, उन्हीं कृष्ण ने मेरे हृदय को कामदेव के असह्य बाणो से वेध दिया ॥ २ ॥

---

१. "कम्" का अर्थ जल भी होता है, जैसे—"पावके च मयूरे च मुखशीर्षजलेषु कम्" । इति विश्वः ।

मम मरणमेव वरमिति विपथकेतना ।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ।। यामि० ।। ३ ।।

इस अरण्य में अब मैं विरह की आग कैसे सह सकती हूँ, तथा यह ज्ञान-शून्य शरीर भी वृथा है, इससे मृत्यु कहीं अच्छी है ।। ३ ।।

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृतकामिनी ।। यामि० ।। ४ ।।

अत्यन्त खेद है कि वसन्त की ये मनोहर रात्रियाँ मुझे क्लेशित कर रही हैं तथा ये ही रात्रियाँ अन्य गोपाङ्गनाओं को जो पुण्यात्मा है, तथा श्रीकृष्ण के साथ है उन्हें आनन्दित कर रही हैं ।। ४ ।।

अहह कलयामि वलयामि वलयादिमणिभूषणम्
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ।। यामि० ।। ५ ।।

हन्त ! श्रीकृष्ण की विरहाग्नि के वहन से ये रत्नजटित आभूषण मुझे सर्वथा दोषपूर्ण प्रतीत हो रहे हैं। अर्थात् पति के बिना स्त्री के लिए शृंगार व्यर्थ है ।। ५ ।।

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति मामपि विषमशीलया ।। यामि० ।। ६ ।।

स्वभाव से ही मृदु यह पुष्पमाला[1] कामदेव की विषम शरलीला के समान फूलों के सदृश कोमल शरीरवाली मेरे हृदय पर अत्यन्त चोट पहुँचा रही है ।।६।।

अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ।। यामि० ।। ७ ।।

मैं तो प्यारे कृष्ण के लिए इस अरण्य में वेतो के कुञ्जों में रहती हूँ किन्तु मधुसूदन तो मुझे हृदय से भी स्मरण नहीं करते ।। ७ ।।

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ।। यामि० ।। ८ ।।

कोमल कला से युक्त, श्रीकृष्ण के चरणों में शरण देने वाली जयदेव कवि की

---

१. विरहियों को पुष्प कामोद्दीपक है ।

वाणी आप के हृदय में इस तरह रहे जैसे—-भाव-हाव-कटाक्ष विक्षेपादि युक्त युवतियाँ रसज्ञों के चित्त में बसती हैं ।। ८

यत्किं काममपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमुद्भ्राम्यति ।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेपि यन्नागतः ।। १ ।।

सुन्दर वेतसलता के कुञ्ज में (संकेतस्थान में) कृष्ण के न जाने पर राधा सोचने लगीं—क्या प्रियतम किसी अन्य कामिनी के पास चले गये ? या मित्रों के हास-परिहास में फँस गये ? अथवा अँधेरे के कारण इस अरण्य में इतस्ततः (भूलकर) घूम रहे हैं ? वा मेरी ही भांति वियोगी होकर चलने में असमर्थ हो गये हैं ? यथा मैं उनके वियोग से एक पग भी नहीं चल सकती वैसी ही वह भी तो नहीं हो गये हैं ? ।। १ ।।

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम् ।
विशङ्कमाना रमितङ्कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह ।। २ ।।

तदनन्तर दुखी तथा मौन विना कृष्ण के आयी हुई (एकाकी) सखी को देख कर राधा ने कहा—"क्या, कृष्ण किसी अन्य गोपांगना के साथ तो नहीं रमण करते हैं ? ऐसा पूछते हुए राधा का भाव ऐसा मालूम पड़ा, मानो वे कृष्ण को किसी अन्याङ्गना के साथ रमण करते हुए देख रही हों ।। २ ।।

वसन्तरागे एकतालीताले अष्टपदी ।। १४ ।।

स्मरसमरोचितविरचितवेशा गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ।
कापि चपला मधुरिपुणा विलसति युवतिरधिकगुणा ।। ध्रु० ।। १ ।।

हे प्रिये ! कामदेव के समर के अनुरूप आभूषणों से वेष रचनेवाली, जिसके बालों के फूल इधर-उधर गिर गये हैं, तथा जिसका जूड़ा भी ढीला पड़ गया है, ऐसी कोई चपल कामिनी, जो हमसे अधिक सुन्दर है कृष्ण के साथ रमण कर रही है ।। १ ।।

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ।
कुचकलशोपरि तरलितहारा ।। कापि च० ।। २ ।।

हे सखि ! जिसे श्रीकृष्ण के आलिंगन से अनुराग उत्पन्न हो गया है, तथा जिसके कलश के समान कुचों के ऊपर हार हिल रहे हैं, ऐसी कोई कामिनी कृष्ण के साथ विलास कर रही हैं। २ ॥

विचलदलकललिताननचन्द्रा ।
तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि च० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! जिसके सुन्दर मुखरूपी चन्द्र पर चपल अलके (लटें) शोभित हो रही हैं, तथा प्रिय के अधरपान से जिसे आलस्य आ रहा है,, ऐसी किसी रमणी के साथ कृष्ण रमण कर रहे हैं ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ।
मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥ कापि च० ॥ ४ ॥

चञ्चल कुण्डलों की रगड़ से जिसके गाल घिस गये हैं, झन-झन शब्द करने वाली करधनी युक्त कमर की चाल से चञ्चल कोई व्रजवनिता श्रीकृष्ण के साथ आनन्द कर रही है ॥ ५ ॥

दयितविलोकितलज्जितहसिता ।
बहुविधकूजितरतिरसरसिता ॥ कापि च० ॥ ५ ॥

हे सखि ! रति में अनेक तरह की वाणी से प्रसन्न तथा श्रीकृष्ण के अपाङ्ग दर्शन से लज्जापूर्वक हास्य करने वाली कोई गोप-ललना कृष्ण के साथ रम रही है ॥५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा ।
श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा ॥ कापि च० ॥ ६ ॥

हे सखि ! दीर्घश्वास तथा नेत्र निमीलन से काम-भाव को व्यक्त करनेवाली रति के आनन्द से कम्पित तथा रोमाञ्चित शरीर वाली कोई व्रजवधू कृष्ण के साथ विहार कर रही है ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।
परिपतितोरसि रतिरणधीरा ॥ कापि च० ॥ ७ ॥

रति-श्रम जनित पसीने के बिन्दुओं से शोभित शरीरवाली, तथा रति के समय पति के वक्षःस्थल पर सोनेवाली, रतिरूप समर में प्रवीण, कोई, व्रजांगना कृष्ण के साथ सम्भोग कर रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
कलिकलुषं शमयतु हरिरमितम् ॥ कापि च० ॥ ८ ॥

जयदेव कविकृत हरि के रमण का यह अति ललित वर्णन कलियुगी पापों का शमन करें ॥ ८

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुजद्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ १ ॥

हे सुहृदये ! मेरे वियोग से धूसर वर्णवाले श्रीकृष्ण के मुखकमल के समान वर्णवाला कामदेव का सुहृद् यह चन्द्र आनन्द-प्रद होने पर भी मेरे चित्त में काम-व्यथा बढ़ा रहा है ॥ १ ॥

गुर्जररागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ १५ ॥

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ॥
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामोद्दीपित, चुम्बन करने से अङ्कुचित, सुन्दर ओठोंवाली व्रज-वनिता के मुखपर श्रीकृष्ण पुलकित होते हुए कस्तूरी का तिलक करते हैं । मानो, चन्द्र में मृगचिन्ह बनाते हैं, ऐसे कामकेलिविजयी कृष्ण अधुना यमुना के तीरवाले उपवन में रमण कर रहे हैं । ॥ १ ॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने ।
कुरबककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने ॥ रमते० ॥ २ ॥

हे सखि ! मेघों के झुण्ड के समान मनोहर बालों की रचना करनेवाले, युवकों के चित्त को चञ्चल करने वाले, कामदेवरूपी हरिणके वनरूप गोपांगना की चोटी में कृष्ण बिजली के समान पीले-पीले कुरबक पुष्प गूँथ रहे हैं ॥ २ ॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरूपिते ।
मणिसरममलं तारकपटलं नखपदशशिभूषिते ॥ रमते० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! कस्तूरी-चर्चित, विशाल कुचरूपी आकाश पर जो नखरूपी चन्द्र से युक्त है, श्रीकृष्ण स्वच्छ मणियों के हाररूपी तारागणों को पहिना रहे हैं ।

(अर्थात्-गोपांगनाओं के कस्तुरी चर्चित, नखक्षत में चिन्हित उत्तुङ्ग कुचों पर मोतियों की मालाएँ पहिना रहे हैं) ॥ ३ ॥

जितविसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले ।
मरकतवलय मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥ रमते० ॥ ४ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण, कमल-दण्डों के सदृश कोमल भुजाओं से युक्त कमलिनी दल के समान हथेलीवाले, तथा बरफ के समान ठण्डे-ठण्डे हाथों में कमल के ऊपर भौरों के समान पन्ना रत्न से जड़े कङ्कणों को पहिना रहे हैं ॥४॥

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ।
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥ रमते० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! वे कृष्ण कामदेव के लिए सुवर्ण का आसन, रति के निवास स्थान तथा मनोहर वस्त्र को धारण करने वाले किसी गोपांगना के उत्तुङ्ग जघनों पर तोरण के तुल्य करधनी (रशना) पहिना रहे हैं ॥ ५ ॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ।
वहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥ रमते० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! नखरूपी मणियों से अलंकृत, कोमल-कोमल पल्लवों के तुल्य कमल-चरण को (किसी व्रजांगना के चरण को) अपने वक्षस्थल के ऊपर रखकर उनमें महावर लगाते हैं ॥ ६ ॥

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे ।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ॥ रेमते० ॥७॥

हे प्रिये ! जब कि वह खल, बलराम का छोटा भाई किसी सुनयनी के साथ विहार करता है, तब कहो, मैं क्यों इस पेड़ के नीचे नीरसी होकर प्रतीक्षा करूँ ? ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ॥ रमते० ॥ ८ ॥

रस-वर्णन करनेवाले, हरि-गुण-गायक, श्रीकृष्ण के चरण-सेवक, जयदेव कवि के अन्तःकरण में कलियुग के दुरित चरित का वास न हो ॥ ८ ॥

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ।

पश्याद्य प्रियसंगमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति ॥ १ ॥

हे सखि ! यदि वे निर्दयी, ठग कृष्ण नहीं आये तो तू क्यों दुःखी हो रही है, क्योंकि वे तो अनेकों महिलाओं के साथ स्वेच्छा से रमण करते हैं, इसमें तेरा क्या दोष ? देख, आज कृष्ण के वशीभूत होकर यह चित्त उत्कंठा से प्रिय के समीप मिलने जायगा ॥ १ ॥

देशांकरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

अनिलतरलकुवलयनयनेन ।
तपति न सा किसलयशयनेन ।
सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे सखि ! पवन से कंपित कमल के समान चञ्चल नेत्रवाले, वनमाली के साथ जिस युवती ने विहार किया, वह कोमल-कोमल पल्लवों की सेज पर सोने से (मेरे समान) दुखी नहीं होती ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ।
स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि० ॥ २ ॥

हे आलि ! फूले हुए कमल के सदृश मुखवाले श्रीकृष्ण के साथ सम्भोग करने वाली गोपवधू, कामबाणों से पीड़ित नहीं होती है । [अर्थात् मेरे ही समान नारियाँ पीड़ित होती हैं, इति ध्वन्यते] ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुवचनेन ।
ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! अमृतवत् मधुर तथा मृदुभाषी कृष्ण के साथ विहार करनेवाली को मलयगिरि का पवन नहीं सताता ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन
लुठति न सा हिमकरकिरणेन ॥ सखि० ॥

हे सखि स्थलकमलवत् सुन्दर हस्त-पादधारी कृष्ण के साथ आनन्दकारिणी को चन्द्र की शीतल किरणें नहीं सतातीं ॥ ४ ॥

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ।
दलति न सा हृदि विरहभरेण ॥ सखि० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! जलपूर्ण मेघ के समान आकृतिधारी कृष्ण के साथ रमण करने वाली को चिरकाल के वियोग की व्यथा नहीं पीड़ा देती ॥ ५ ॥

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ।
श्वसिति न सा परिजनहसनेन ॥ सखि० ॥ ६ ॥

हे आलि ! सुवर्ण-कान्ति के समान पीताम्बरधारी कृष्ण के साथ सम्भोगिता को सखियों का ठिठोलियों से (परिहास से) दुःख नहीं होता ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ।
वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥ सखि० ॥ ७ ॥

हे सखि ! सकलभुवन में श्रेष्ठ (सर्वश्रेष्ठ) युवक कृष्ण के साथ जिसने विहार किया उसे कामपीड़ी कहाँ ? ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ।
प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि० ॥ ८ ॥

जयदेवकवि के इन वचनों से श्रीकृष्ण आपके हृदय में प्रवेश करें ॥ ८ ॥

मनोभवानन्दन चन्दनानिल
प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।
क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥ १ ॥

हे कामदेव को आनन्द करानेवाले दक्षिणपवन ! कृपया अपनी कुटिलता त्यागिये, हे जगत्प्राण ! मेरे सामने माधव को लाकर तब मेरे प्राण हरिये ॥ १ ॥

रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते ।
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ॥ २ ॥

हे प्रिये ! प्रियतम के स्मरण से सखियों के साथ आलाप-प्रलाप शत्रुवत्, शीतलपवन अग्निवत्, अमृतकिरणधारी चन्द्र विषवत्, अति क्लेशकारी मालूम पड़ते हैं । इतना होने पर भी, हठात् मेरा चित्त उसी निर्दय कृष्ण की ओर झुका

जाता है, वास्तव में–मृगनयनियों के लिए कामदेव अत्यन्त दुष्ट तथा निरं-कुश है ॥ २ ॥

बाधां विधेहि मलयानिल पञ्चबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ।
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै-
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥३॥

हे मलयपवन ! आप मुझे खूब सता लीजिए, हे पञ्चबाण ! (कामदेव) आप मेरे प्राणों को हर लोजिए, प्राणों के रहते मैं घर वापस न जाऊँगी । हे यमराज की वहिन, यमुने ! आप क्यों बाकी रखती हैं, आप भी अपना तरङ्गों से मुझे सीचिये, जिससे मेरे शरीर का दाह दूर हो जाय ॥ ३ ॥

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानन्दैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम् ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मदाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥४॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

जिन भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को सानन्द इन्द्रादि देवगण अपने रत्न जड़े हुए मुकुटों से आदरपूर्वक स्पर्श करते हैं तथा जिनके चरणकमलों के पराग से गङ्गाजल सदा व्याप्त रहता है, उन भगवान् के पादारविन्दो को अशुभ के नाश के लिए प्रणाम है ॥ ११ ॥

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्य के नागरनारायण नामक सप्तमसर्ग की
"इन्दु" टीका समाप्त हुई ।

अष्टमः सर्गः

अथ कथमपि यामिनीं विनीय स्मरशरजर्जरिताऽपि सा प्रभाते ।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥१॥

---

१. आप मुझे जलमग्न कर लीजिये ।

इसके अनन्तर येन-केन प्रकारेण रात बिता करके कामबाणों से पीड़ित होने पर भी वह राधा, प्रातःकाल में आकर विनयपूर्वक वचनों को बोलनेवाले तथा पैरों पड़नेवाले श्रीकृष्ण से ईर्ष्यायुक्त वचनों को बोली ॥ १ ॥

भैरवीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥१७॥

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम् ।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ॥
हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ॥ध्रु० ॥१॥

आपके ये नेत्र रात्रि के जागरण से लाल-लाल हो रहे हैं जिनसे स्पष्टरूपेण प्रकट है कि किसी नायिका के शृंगार रस का अनुराग इनमें भरा हुआ है। अतः हे माधव ! आप उसी नायिका के पास जाइये जो आप के कष्टों को दूर करती है। हे कमलनयन ! आप धूर्त्तताभरे वाक्यों को मेरे सम्मुख न कहिये ॥ १ ॥

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम् ॥हरि० ॥२॥

हे कृष्ण काजल से मलिन नेत्रो के चुम्बन से आपके ये लाल-लाल ओठ नीले पड़ गये हैं तथा आपकी देह के रंग में मिल गये हैं। (आपके ये ओठ अन्य कारणों से काले नहीं हुए) ॥ २ ॥

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम् ॥हरि० ॥३॥

हे कृष्ण ! आपका शरीर कामयुद्ध में तीखे-तीखे नाखूनों के व्रणों से रेखावान् होकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे—पन्ने के टुकड़े पर सुवर्णाक्षरों से रतिजय लेख मुद्रित हो, अर्थात् उस नायिका ने मुग्ध होकर आपको खूब नोंचा है जिससे ये नखक्षत आपके शरीर में रति में विजय पाने के प्रमाण की भाँति दीखते हैं, अतः हे नाथ ! आप उसी के पास जाइये ॥ ३ ॥

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥हरि० ॥४॥

हे कृष्ण ! उस नायिका के चरण-कमलों में लगे हुए महावर से आर्द्र यह आपका हृदय-पटल ऐसा दीखता है मानो, मदनरूपी वृक्ष से नवीन-नवीन पत्तों का समूह बाहर आ गया हो । अतः आप उसी प्रेमिका के समीप जाइये ॥ ४ ॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ॥ हरि० ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! आपके ओठों पर अन्याङ्गनाओं से किये हुए दन्तक्षत मेरे चित्त को क्लेशित करते हैं, क्या इतने पर भी आप कहेंगे कि मुझ में तथा तुम में अभेद सम्बन्ध है ? हे माधव ! आप उसी के पास जायँ ॥ ५ ॥

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम् ।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् ॥ हरि० ॥ ६ ॥

हे कृष्ण ! मुझे ऐसा अनुभव होता है कि जैसे आपका शरीर काले रंग का है वैसे ही आपका अन्तःकरण भी काले रंग का है । अन्यथा मुझ कामपीड़िता को क्यों छलते ? आप वहीं जाइये ॥ ६ ॥

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दलबालचरित्रम् ॥ हरि० ॥ ७ ॥

हे कृष्ण ! इस विपिन में अबलाओं को सताने के लिए आप ही भ्रमण करते हैं, इसमें किंचित् भी शंशय नहीं, क्योंकि निर्दय होकर स्त्रियों को मारनेवाला आपका बाल-चरित है, जो[1] पूतना से जाना गया है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

हे विद्वानो ! जयदेवकवि कृत सम्भोग शृंगारवञ्चित खण्डिता नायिका का विलाप सुनिये, अमृत के समान मधुर यह कृष्ण-चरित सुरपुर (स्वर्ग) से भी दुष्प्राप्य है ॥ ८ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम् ।

---

१ पूतना एक राक्षसी थी, जिसे कृष्ण ने बालकाल में मारा था ।

ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन किसव !
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ।। १ ।।

हे कितव ! अङ्गना के पैरों में लगे हुए रक्तवर्ण महावर से आपका अन्तः-करण बाह्यराग-रंजित ज्ञात होता है। इस कृत्रिम प्रेम को ज्ञात कर जगत्प्रसिद्ध विपुल अनुराग के नाश के भय से आपका दर्शन मुझे शोक से विचित्र लज्जा को प्रकट करता है। [अर्थात् आप में आन्तरिक प्रेम नहीं है।] ।। १ ।।

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरः संवीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ।। २ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने विलक्षणलक्ष्मीपतिर्नामाष्टमः सर्गः ।।८।।

प्रभात में नीले रंग के वस्त्रों को धारण किये हुए कृष्ण तथा पीताम्बराच्छादित राधा के वक्षस्थल को देखकर सखि-मण्डल में आश्चर्य की सीमा न रही, तत्काल मन्द-मन्द हास्य से लज्जायुक्त चंचल नयनों के अंचल को राधा के मुख कमल पर धरने वाले नन्द के पुत्र जगत् के लिये कल्याणकारी हों ।। २ ।।

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्य की विलक्षण लक्ष्मीपति-नामक अष्टम सर्ग की "इन्दु" टीका समाप्त हुई।



नवमः सर्गः

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विवादसम्पन्नाम्।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच रहः सखी ।। १ ।।

तत्पश्चात्, कामपीड़िता, रतिसुखरहिता, अत्यन्त दुःखिता, हरिचरित-स्मरण-कर्त्री, कलहान्तरिता (जो पति का अपमान करके पश्चात्ताप करती है) राधा से एकान्त में एक सखी कहने लगी ।। १ ।।

गुर्जरीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १८ ॥

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।
किमपरमधिकसुखं सखि भवने ॥
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

अयि मानिनि ! अब आप कृष्ण के प्रति मान मत करिये, हे प्रिये ! यह वसन्त की हवा बह रही है, तथा प्रिय कृष्ण भी संकेतस्थल में आ गये हैं, क्या इससे भी ज्यादा घर पर आनन्द मिलेगा ? ॥ १ ॥

तालफलादपि गुरुमतिसरसम् ।
किं विकलीकुरुषे कुचकलशम् ॥ माध० ॥ २ ॥

हे प्रिये ! ताल फल से भी अधिक कठोर और सरस तथा कलश के समान विशाल इन स्तनों को क्यों विफल करती हो ? [कृष्ण के कर-स्पर्श से इन्हें सफल करो] ॥ २ ॥

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ॥ माध० ॥ ३ ॥

अयि मानिनि ! क्या मैंने कई वार नहीं कहा था ? कि "परम रमणीय कृष्ण का परित्याग न करिये" ॥ ३ ॥

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ।
विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ माध० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! अब आप क्यों पश्चात्ताप करती हैं ? क्यों रोती तथा व्याकुल होती हैं ? यह देखिये, आप पर युवतियाँ हँसती हैं ['भ्रष्टावसरन्यायेन' आपने प्रिय का परित्याग किया उसका फल है] ॥ ४ ॥

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ।
हरिमवलोकय सफलय नयने ॥ माध० ॥ ५ ॥

हे मानिनि ! इन मृदु-मृदु नलिननयनों की शीतल शय्या पर कृष्ण को देखिये, पुनः (दर्शनानन्तर) नयनों को कृतकृत्य करिये ॥ ५ ॥

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।
श्रृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ माध० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! आप अपने चित्त में क्यों इस तरह दीर्घ विषाद करती हैं मेरी बातें सुनिये, मैं आपकी हिताभिलाषिणी हूँ ।। ६ ।।

हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम् ।
किमति करोषि हृदयमति विधुरम् ।। माध० ।। ७ ।।

हे मानिनि ! अपने मन को क्यों क्लेशित कर रही हो ? ऐसा उपाय करिये (इस रीति से कार्य करिये) कि श्रीकृष्ण आपके समीप आवें तथा आपसे मधुर-मधुर बातें करें ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् ।। माध० ।। ८ ।।

जयदेव कविकृत परम रमणीय श्रीकृष्ण-चरित रसज्ञों को सुखकारी हो ।।८।।

स्निग्धे यत्सरुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ।। १ ।।

हे राधे ! आप प्रेम करने वाले श्रीकृष्ण से तीक्ष्ण वार्ता करती हैं, नम्रता से विनय करनेवाले कृष्ण से स्तब्धता करती हैं, अनुरागी कृष्ण से विराग करती हैं, अभिमुखी कृष्ण से विमुखी होती हैं, उसी का कुपरिणाम है कि आपको श्रीखण्ड (चन्दन) की चर्चा विषवत्, चन्द्र सूर्यवत्, हिम अग्निवत् तथा क्रीड़ा का सुख वेदना के समान लग रहा है ।। १ ।।

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः ।। २ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दे कलहान्तरितावर्णने मुग्धमकुन्दी नाम नवमः सर्गः ।। ९ ।।

मृगनयनियों के अन्तःकरणों को मोहने में जिनके मुकुट में गूंथे हुए पारिजातके पुष्प खिसक गये हैं, तथा जो अचेतन पदार्थों तक को आकर्षित करते

हैं, एवं देखनेवालों को हर्षान्वित करते है, जो महामन्त्र स्वरूप हैं, जो उद्दण्ड दैत्यों से पीड़ित देवताओं के दुःसह दुःखों का शमन करते हैं, उन भगवान् कृष्ण की वंशी की ध्वनि आप लोगों का मंगल करे।

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के मुग्धमुकुन्द नामक नवम सर्ग की "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई।



दशमः सर्गः

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-
निःश्वासनिःसहमुखीं समुपेत्य राधाम्।
सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते
सानन्दगद्गदमिदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

इसी समय सायंकाल में, अत्यन्त रोष करनेवाली, अधिक श्वासों के छोड़ने से म्लान-मुखवाली, लज्जापूर्वक सखी के मुख को देखनेवाली सुमुखी राधा के समीप आकर कृष्ण ने आनन्द से कहा ॥ १ ॥

देशवराडिरागे आडवताले अष्टपदी ॥१९॥

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी
हरति दरतिमिरमतिघोरम्।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयति लोचनचकोरम् ॥
प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले
मुञ्च मयि मानमनिदानम्।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! हे कोमलचित्ते आप यदि कुछ भी कहती हैं तो आपकी दन्त-प्रभा मेरे भयरूपी गाढ़ान्धकार का शमन कर देती है, तथा आपका मुखरूपी चन्द्र आपके अधरों की सुधा पीने के लिए मेरे नयनरूपी चकोरों को प्रोत्साहित करता है। हे प्रिये चारुशीले ! मेरे ऊपर कृपा करके मान का परित्याग कीजिये,

तथा अपने मुखरूपी कमल का मधुपान (चुम्बन) दीजिये क्योंकि मेरा चित्त कामाग्नि से जल रहा है [अतः आपके मधुपान से शान्त हो] ॥ १ ॥

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मति कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम् ।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुखजातम् ॥प्रिये चारु० ॥ २ ॥

हे शुभ्रदन्ते ! आपको जिस रीति से मुझे दण्ड देना हो दीजिए, यदि आपका मेरे ऊपर यथार्थ रोष है तो मुझे अपने तेज नख रूपी बाणों से वेधिये, भुजाओं में बांध लीजिये, दांतों से काट लीजिये [विश्वासघाती को राजदण्ड- पहले मार का, बाद में बन्धन का, अन्त में फाँसी (काटने) का दिया जाता है। इसी अभिप्राय से श्रीकृष्ण की उक्ति है] अथच जैसे भी आपको सन्तोष हो, वह कर लीजिए ॥ २ ॥

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमतियत्नम् ॥ प्रिये चारु० ॥ ३ ॥

हे प्राणेश्वरी ! तुम मेरे अलङ्कार हो, इस संसार सागर में मणि के सदृश हो, तुम्हीं मेरा जीवन हो। अर्थात् मेरे लिये सब कुछ तुम्हीं हो। अतः मेरे ऊपर कृपा करो। तुम्हें प्रसन्न करने के लिये सदा मैं हृदय से प्रयत्न करता हूँ ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं धारयति कोकनदरूपम् ।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ॥
॥ प्रिये चारु० ॥ ४ ॥

हे तन्वि ! तुम्हारे ये नेत्र नील-कमल के सदृश होने पर भी रोष से अरुण वर्ण के हो रहे हैं, यदि मुझ कृष्ण को अपने कामबाणस्वरूप नेत्रों से रङ्ग रही हो तो यह तुम्हारा रंगना ठीक ही है। [क्योंकि जो बाण से विद्ध होता है वह रक्त से लाल भी हो जाता है] अथवा—मेरे ऊपर क्रोध करने से ही तुम्हारी

काली-काली सुन्दर आँखें लाल हो गई हैं ? तो इस पुरस्कार में अपने कटाक्षों से मुझे भी लाल कर लो (प्रसन्न हो जाओ) ॥ ४ ॥

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी रञ्जयतु तव हृदयदेशम् ।
रसतु रसनापि तव घनजघनमण्डले घोषयतु मन्मथनिदेशम् ॥
॥ प्रिये चारु० ॥ ५ ॥

हे प्राणेश्वरी ! कलशरूपी स्तनों पर रत्नों की माला शोभायमान हो, तथा वह माला तुम्हारे वक्षस्थल को अनुरक्त करने वाली हो । हे प्रिये ! तुम्हारे मोटे जांघों के ऊपर करधनी की ध्वनि गूँजे, तथा वही करधनी की ध्वनि कामदेव को आज्ञा की घोषणा करने वाली हो ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं जनितरतिरङ्गपरभागम् ।
भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं सरसलसदलक्तकरागम् ॥
॥ प्रिये चारु० ॥ ५ ॥

हे स्निग्धवचने ! स्थल कमल की शोभा का तिरस्कार करने वाले, मेरे चित्त को आनन्दित करने वाले, रतिराग में मोद कराने वाले, तुम्हारे इन दोनों पैरों में, यदि कहो तो महावर लगाऊँ ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं देहि पदपल्लवमुदारम् ।
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो हरतु तदुपाहितविकारम् ॥
॥ प्रिये चारु० ॥ ७ ॥

हे हृदयेश्वरी कामदेवरूपी विष का शमन करने वाले, सुन्दर नवीन पत्तों के समान अपने कोमल चरणों को मेरे शिर पर रखो, जिससे शांति मिले, क्योंकि भीषण कामज्वाला मुझे सता रही है ॥ ७ ॥

इति चटुलचाटुपचाटुरुमुरवैरिणो राधिकामधिवचनजातम् ।
जयति पद्मावतीरमणजयदेवकविभारतीभणितमिति गीतम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चतुरता तथा प्रेमरस-परिपूरित पद्मा के पति जयदेव कवि द्वारा प्रगीत राधा के प्रति कहे गये, मानिनियों को अत्यन्त आनन्द देने वाले श्रीकृष्ण के ये वाक्य सभी वाक्यों से बढ़-चढ़कर हैं ॥ ८ ॥

परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घन—
स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ १ ॥

हे सन्तप्ते ! शंकाएँ त्यागिये, क्योंकि कठोर स्तनों तथा सुन्दर जांघोंवाली तुम्हीं मेरे हृदय में सदा व्याप्त रहती हो, अतः निराकार अनङ्ग (कामदेव) के अतिरिक्त, मेरे अन्तःकरण में शुभलक्षण युक्त अन्य किसी रमणी के लिए स्थान ही नहीं रहता है, अत हे मानिनि ! प्रणय पूर्वक मेरा आलिङ्गन करो । [आप मुझे वशी समझिये] ॥ १ ॥

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वल्लिबन्धनिविडस्तनपीडनानि ।
चण्डि ! त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाण-
चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥ २ ॥

हे मुग्धे ! अन्यथा मुझे निर्दयतापूर्वक दांतों से काट लो, भुजारूपी लता से बांध दो, तथा अत्यन्त कठोर कुचों की ताड़ना दे लो, क्योंकि दोषी को ये ही दण्ड दिये जाते हैं, हे चण्डि ! मेरी रक्षा करो क्योंकि चाण्डाल-काम-वाणों से मेरे प्राण जा रहे हैं । [अतः मेरी सहायता करो] ॥ २ ॥

शशिमुखि ! तव भाति भङ्गरभ्रू-
र्युवजनमोहकरालकालसर्पी ।
तदुदितभयभञ्जनाय यूनां
त्व-दधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ३ ॥

हे चन्द्रानने ! तुम्हारी तिरछी भौंहें युवकों को मोहने में भयङ्कर काले सर्प की तरह हैं, उनके भय से भयभीत युवकों को केवल तुम्हारी अधररूपी सुधा ही सिद्ध ओषधि है ॥ ३ ॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुखि ! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ॥ ४ ॥

हे कृशाङ्गि ! तुम्हारा मौन मुझे वृथा कष्ट दे रहा है, हे तरुणि ! मधुर-मधुर वाणी से मेरा ताप दूर करो, कटाक्ष-विक्षेप से मेरा विनोद करो। हे चारु-वक्त्रे ! विमुखत्व त्यागो, मुझे वृथा न ठगो क्योंकि हे मुग्धे ! तुम्हारा अनन्य प्रेमी मैं स्वयं आ गया हूँ ॥ ४ ॥

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम् ।
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये !
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥ ५ ॥

हे चण्डि ![1] बन्धूक (दुपहरिया)[2] के फूल के सदृश यह तुम्हारा अधर, महुए के फूल की प्रभा के समान ये तुम्हारे चिकने कपोल, नील कमलों की कान्ति को चुराने वाले ये नेत्र, तिल के पुष्प के सदृश यह नासिका कितनी शोभा दे रही है। हे कुन्ददन्ति ! कामदेव तुम्हारे मुख का सहारा लेकर ही विश्वविजय करता है। [कामदेव पाँच पुष्प बाणों से विश्वविजयी कहाते हैं, वे—१ बन्धूक, २ मधूक ३ नीलोत्पल, ४ तिलपुष्प और ५ कुन्दरूप पाँचों पुष्प-बाण तुम्हारे ही मुख पर विराजमान है] ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवनं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ॥ ६ ॥

हे मुग्धे ! तुम्हारे नयन मद से भरे हुए हैं, मुख चन्द्र के समान है, गमन अत्यन्त मनोरम है, जांघें कदली स्तम्भों को जीतने वाली है, रतिकेलि कलापूर्ण है, तुम्हारी भौंहें सुन्दर चित्र-रेखावत् हैं, हे तन्वि ! आश्चर्य है कि पृथिवी पर रहने पर भी तुम में सुराङ्गनाओं के सभी गुण विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् ।

१. चण्डि—अत्यन्त कोपवती नारी। चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः—इत्यमरः।
२. दुपहरिया—यह फूल लाल होता है।

पत्रे बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्
व्यामोहेन जितं जितं जितमिति व्यालोलकोलाहलः ॥ ७ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे मानिनी वर्णने चतुरचतुर्भुजो नाम

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

(१) कुवलयापीड के साथ युद्ध में उसके कुम्भ का भेदन करते हुए राधा के उन्नत स्तनों का स्मरण करनेवाले, भयदायी हाथी की मृत्यु तथा भयाकुल पिलवान को देखकर "कंस को जीत लिया" एसा कोलाहल मचा, भयंकर उस हाथी को मारकर इस प्रकार का कोलाहल उत्पन्न कराने वाले श्रीकृष्ण हमारा अनुराग परिवर्धित करें ॥ ७ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के चतुरचतुर्भुजनामक दशम सर्ग की "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

एकादशः सर्गः

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ॥ १ ॥

मृगनयनी राधा के साथ बहुत देर तक प्रेमालाप के द्वारा उन्हें पुलकित कर सन्ध्या समय श्रीकृष्ण के कुञ्ज में शयन करने चले जाने पर, एक सखी ने राधा का सुन्दर शृङ्गार कर प्रमुदित हृदयवाली राधा से कहा ॥ १ ॥

वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २० ॥

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणरचितप्रणिपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ॥
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

---

(१) कुवलयापीड— कंस के हाथी का नाम था ।

हे मुग्धे ! मधुर वचनों को बोलनेवाले, आपके पैरों पड़नेवाले, अधुना आप के अनुकूल वेतस लता गृह में क्रीडाशयन पर पधारे हैं, अतः हे राधे ! उन मधुरिपु, कृष्ण के समीप शीघ्र चलिये ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम् ।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपेहि विधेहि मरालविकारम् ॥ मुग्धे० ॥ २ ॥

हे कठोर जांघों तथा उन्नत उरोजोंवाली राधे ! धीरे-धीरे पैरों को पृथिवी पर धरती हुई तथा रत्नजटित नूपुर आदि पैर के आभूषणों को बजाती हुई हंस की चाल से आप श्रीकृष्ण के समीप चलिये ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ।
सुमनशरासनशासनवन्दिनि पिकनिकरे भज भावम् ॥ मुग्धे० ॥३॥

हे वयस्ये ! युवतियों को मोहनेवाले, तथा रसज्ञ श्रीकृष्ण की बांसुरी की ध्वनि सुनिये, तथा कामदेव के शासन की स्तुति करने वाली कोयल के भाव को धारण करिये। [श्रीकृष्ण के समीप चलकर कोकिल-कंठी होकर बात करिये] ॥ ३ ॥

अनिलतरलकिशलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् ।
प्रेरणमिव करभोरु ! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ॥ मुग्धे० ॥ ४ ॥

हे करभोरु ! ये देखिये, पवन द्वारा प्रेरित लता समूह चञ्चल-पल्लवरूपी हाथों से आप को गमन की प्रेरणा दे रहा है, अतः हे प्रिये ! अब विलम्ब न करिये ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहार-विमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥ मुग्धे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! यदि आप को उक्त पवन की प्रेरणा पर विश्वास नहीं है तो कामदेव की तरंग के वशीभूत होकर हिलनेवाले, तथा श्रीकृष्ण के आलिगन को सूचित करनेवाले, एवं हाररूपी जलधारावाले कुम्भ के समान अपने इन कुच-द्वय से पूछ लीजिये कि ये क्योंकर स्फुरण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम् ।
चण्डि ! रणितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ॥ मुग्धे० ॥६॥

हे रसज्ञे ! सभी सखियों ने यह बात ज्ञात कर ली है कि आप की देह रति-रूपी संग्राम के लिए प्रस्तुत है, (ऐसी अवस्था में) हे चण्डि ! लज्जा को त्याग कर करधनी को शब्दायमान करती हुई आप चलिये । [आप की अवस्था रमण योग्य है] ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ।
चलवलयक्वाणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम् ॥मुग्धे०॥ ७ ॥

हे कल्याणि ! कामदेव के बाण के समान सुन्दर नखवाले हाथ से लाल-युक्त (हाव-भाव के साथ) सखी का हाथ पकड़ कर चलिये, तथा पायल के घुघुरुओं को ध्वन्यमान करके अपनी गति विशेष की श्रीकृष्ण को सूचना दीजिये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम् ।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम् ॥ मुग्धे० ॥ ८ ॥

जयदेव कवि द्वारा रचित यह गीत मणियों की माला का तिरस्कार करने वाला, युवतियों को उदासीन बनाने वाला हरिसेवियों के कण्ठ में बसे ॥ ८ ॥

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः ।
स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः ॥ १ ॥

हे राधिके ! प्रगाढ अन्धकार में स्थित लतागृह में विराजमान आपके प्रिय कृष्ण चिन्ताकुल होकर सोचते हैं—वे राधा मुझे देखेंगी, तत्पश्चात् मधुर-मधुर कामवार्ताएँ करेंगी, । पुनः प्रत्यंगों का आलिंगन करके पुलकित हो जायँगी, तदनन्तर मेरे साथ रतिक्रीड़ा करेंगी, इत्यादि बहुविध कल्पना करते हुए ध्यानमग्न होकर श्रीकृष्ण ध्यान में आपको देखते हैं तथा देखते ही काँप जाते हैं, रोमांचित हो जाते हैं इसी प्रकार अनेक अवस्थाओं को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिप कज्जलं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावली
मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।

धूर्तानामभिसारसत्वरहृदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि !
ध्वान्त नीलनिचोलचारुसुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥ २ ॥

हे शुभे ! आँखों में काजल, कानों में मोरपंख के गुच्छे, शिर में नीले कमलों की माला, स्तनों पर कस्तूरी की पत्र रचना करके-प्रायः धूर्तनायिकाओं के संकेत स्थान में जाने के लिए उपर्युक्त आभूषण ही हैं, क्योंकि निकुञ्ज में उनके सर्वाङ्गों को चारों ओर से काले वस्त्र के समान फैला हुआ गाढान्धकार आलिंगन करता है—चलिये ॥ २ ॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
माबद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः ।
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! केसरिया रंग की देहधारिणी अभिसारिकाओं के लिए, मणि-मञ्जरियों से परिव्याप्त, चारों ओर फैला हुआ तमाल पत्रक के तुल्य, घना अन्धकार प्रेमरूपी सुवर्ण की कसौटी है। जैसे सुनार सुवर्ण की परीक्षा कसौटी पर करता है, तद्वत्—प्रेमी प्रेमिकाओं की परीक्षा, अन्धेरे में करते हैं ॥ ३ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।
द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडावतीमथ सखी निजगाद राधाम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर मालाओं, सुवर्ण की चमकदार करधनी, केयूर, कंकण आदि को मणियों से प्रदीप्त लतागृह के द्वार पर श्रीकृष्ण को देख कर लज्जावती राधा से एक सखी बोली ॥ ४ ॥

(१) वराटिरागे आडवताले अष्टपदी ॥ २१ ॥

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने
विलस रतिरभसहसितवदने
प्रविश राधे ! माधवसमीपमिह ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

---

(१) कोई वराडी राग रूपकताल कहते हैं ।

हे राधे ! सम्भोग की क्रीड़ा के उमङ्ग से उत्कंठिते ! लताभवन के क्रीडा-गृह में जाइये, तथा माधव के साथ रमण करिये ॥ १ ॥

नवभवदशोकदलशयनसारे
विलस कुचकलशतरलहारे ॥ प्रविश० ॥ २ ॥

कलश के सदृश स्तनों पर चञ्चल माला धारण करनेवाली, हे राधे ! नवीन अशोक के पत्तों से सुसज्जित शय्या पर श्रीकृष्ण के साथ रमण करिये ॥ २ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे
विलस कुसुमसुकुमारदेहे ॥प्रविश० ॥ ३ ॥

हे पुष्प के समाम सुकुमार-शरीर-धारिणी ! पुष्पपुञ्जनिर्मित पवित्र इस शयन गृह में जाइये तथा श्रीकृष्ण के साथ आमोद-प्रमोद कीजिये ॥ ३ ॥

चलमलयपवनसुरभिशीते
विलस रसवलितललितगीते ॥ प्रविश० ॥ ४ ॥

हे शृङ्गार युक्त गायनशीले ! मन्द-मन्द बहती हुई मलय गिरि की हवा की सुगन्ध से सुगन्धित तथा शीतल इस प्रेमभवन में जाकर श्रीकृष्ण के साथ हास-परिहास करिये ॥ ४ ॥

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने
विलस चिरमिलितपीवजघने ॥ प्रविश० ॥ ५ ॥

हे चिरमिलित जांघोंवाली ! नानाभाँति की लताओं के पत्तों से ढँकी हुई इस घनी कुञ्ज में जाकर "कृष्णप्रेमिका" वनिये ॥ ५ ॥

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे
विलस मदनरभसरसभावे ॥ प्रविश० ॥ ६ ॥

हे कामजन्य रसभाववती ! पुष्प रस का आस्वाद करने से आनन्दपूर्वक झंकार करनेवाले भौंरों के झुण्डवाले लताभवन में जाकर प्रेम लूटिये ॥ ६ ॥

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे
विलस दशनरुचिरशिखरे ॥ प्रविश० ॥ ७ ॥

हे[1] शुभदन्ते ! (दांतों की चमक-दमक से सुन्दर दन्तकोटिवाली) कोयलों की मधुर वाणियों से गुञ्जायमान लतागृह में प्रवेशकर आनन्द लीजिये ॥७॥

---

१. जिस स्त्री की दन्तकोटि सुन्दर होती है वह भाग्यवती होती है ।

विहितपद्मावतीसुखसमाजे
कुरु मुरारे! मङ्गलशतानि
भणितजयदेवकविराजराजे ॥ प्रविश० ॥ ८ ॥

पद्मावती को पुलकित करनेवाले जयदेवकवि के लिए हे कृष्ण! सैकड़ों प्रकार के शुभ (मंगल) कीजिये ॥ ८ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम् ।
अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्म्यास्तव
क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कृतः सम्भ्रमः ॥ ९ ॥

हे राधिके! आप के दीर्घ कालतक चित्त में धारण करने से अत्यन्त थके कामदेव से सताये हुए, श्रीकृष्ण, आप के सुधा रस से परिपूरित, कुन्दरू फल के सदृश लाल-लाल अधरों का पान करना चाहते हैं, अतः हे प्रिये! इनकी गोद को क्षणमात्र (बैठकर) शोभित कर दीजिये, क्योंकि ये कृष्ण आप के भौंहों के इशारे पर खरीदे हुए नौकर के समान चलनेवाले तथा आप के चरण कमलों की सेवा करनेवाले हैं, अतः इनके समीप जाने में सम्भ्रम न करिये ॥९॥

सा ससाध्वससानन्द गोविन्दे लाललोचना ।
सिञ्जाना मणिमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ॥ २ ॥

चञ्चलनयनी वह राधा, लज्जा तथा हर्ष सहित अपने मञ्जीरों को ध्वन्यमान करती हुई उस लतागृह मे चली गयीं ॥ २ ॥

वराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २ ॥

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम् ।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ।
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम् । ध्रु० १ ॥

राधा ने चन्द्र के मण्डल को देखकर चपल तथा बड़ी तरङ्गवाले समुद्र के समान, राधा के मुखरूपी चन्द्र के दर्शन से आनन्दित विविध भांति की कलाओं से पूर्ण, समभाववाले, दीर्घकाल से राधा के साथ रमणाभिलाषी, हर्ष से आह्लादित मुखवाले कामदेव के गृहरूप कृष्ण को देखा ॥ १ ॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम् ।
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥ हरि० ॥ २ ॥

राधा ने, नितान्त श्वेत फेनराशिमिश्रित यमुना जल के प्रवाह के सदृश, अत्यन्त शुभ्र तथा लम्बे हार को धारण किये हुए श्रीकृष्ण को देखा ॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटल-भरवलयितमूलम् ॥ हरि० ॥ ३ ॥

राधा ने पीतवर्ण के मकरन्द से परिव्याप्त नीले कमल के सदृश, सुकुमार देह पर पीताम्बर धारण किये कृष्ण को देखा ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहर-मदनजनितरतिरागम् ।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥ हरि० ॥ ४ ॥

राधा ने शरद ऋतु में विकसित कमल के मध्य में स्थित युगल (दो) खञ्जन पक्षियों से युक्त तालाब के सदृश, चञ्चल नयनों की कोरों से, मनोहर मुख द्वारा रमणियों में अनुराग उत्पन्न करते वाले श्रीकृष्ण को देखा ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिर-सकुण्डलशोभम् ।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम् ॥ हरि० ॥ ५ ॥

राधा ने मुखकमल के परिशीलन (अच्छी तरह देखने) के लिए परस्पर मिले हुए सूर्य के समान प्रकाशित कुण्डलों से विभूषित, मुसकराहट की छवि से मनोहर प्रफुल्लित अधररूपी पल्लवों से रमणियों को रतिलाभ कराने वाले श्रीकृष्ण को देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥ हरि० ॥ ६ ॥

राधा ने चन्द्रकिरणों से शोभायमान मेघ के मध्यम भाग के सदृश मनोहर पुष्पों से शोभायमान केशवाले, अँधेरे में उदित चन्द्रमण्डल के समान शुद्ध मलय पर्वत के चन्दन का तिलक किये हुए श्रीकृष्ण को देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥ हरि० ॥ ७ ।

राधा ने रोमाञ्चातिशय से दन्तुरित, रतिकलाओं से अधीर, मणियों के

किरण समूह से देदीप्यमान आभूषणों से शोभित शरीर वाले श्रीकृष्ण को देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवेन द्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं भवजलसुकृतोदयसारम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

हे भक्तो ! श्री जयदेव कवि के स्तवन से द्विगुणित अलङ्कारभारवाले, पुण्योदय के तत्त्वरूप श्रीकृष्ण को चित्त में धारण कर प्रणाम कीजिये ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन—
प्रयासेनैवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

प्यारे श्रीकृष्ण के दर्शन के समय राधा के नेत्र प्रान्त भागों का अतिक्रमण करके कान तक चले गये, मानो उसी के श्रम से पसीना के समान (आनन्द के कारण) हर्षाश्रु बहने लगा ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरवशाकूतसुभगं
सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ २ ॥

खुजली के बहाने सावधानीपूर्वक अपनी मुस्कराहट को रोककर सखियों के लतागृह से बाहर चले जाने पर, काम विकार से अत्यन्त मनोहर अपने प्रिय कृष्ण के मुख को देखकर राधा की लज्जा स्वयं लज्जित होकर दूर चली गयी। [राधा ने एकान्त में लज्जा त्याग दी] ॥ २ ॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ ३ ॥

कंस के कुवलयापीड नामक गज को बाहुदण्ड की क्रीडा से विनाश करनेवाले रक्त के बिन्दुओं से व्याप्त, भुजदण्ड को मानो श्रीकृष्ण ने कुवलयापीड के रण

से हर्षित होकर स्वयं सिन्दूर से रञ्जित किया हो, तथा जयश्री द्वारा देवपुष्प (पारिजात के फूल) से पूजित मुरारीका बाहुदण्ड आप का कल्याण करे ॥३॥

सौन्दर्यैकनिधेरनङ्गललनालावण्यलीलायुषो
राधाया हृदि पल्वले मनसिजक्रीडैकरङ्गस्थले ।
रम्योरोजयुगे हि खेलनरसित्वादात्मनः ख्यापयन्
ध्यातुः मानसराजहंसनिभतां देयान्मुकुन्दो मुदम् ॥४॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सानन्दगोविन्दो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

सौन्दर्य की एकमात्रनिधि, कामभार्या (रति) की मनोहर लीलाओं को धारण करनेवाली, कामदेव के क्रीडा-रंगस्थल के समान राधा के सुन्दर उरोजों के साथ खेलने में अपने का प्रसिद्ध करने वाले, ध्यान करनेवालों के लिये मान सरोवर के राजहंस के समान भगवान् मुकुन्द आनन्दकारी हों ॥ ४ ॥

इस प्रकार से गीतगोविन्द काव्य के सानन्दगोविन्दनामक एकादशसर्ग की "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।



द्वादशः सर्गः

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरशरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥ १ ॥

सखियों के चले जाने के पश्चात् अत्यन्त लज्जा के कारण कामदेव के वशीभूत होने के अभिप्राय से मृदु हास्ययुक्त अधरोष्ठवाली प्रेमपूरित तथा बार बार नूतन पल्लव एवं कुसुमों की शय्या को अवलोकन करनेवाली राधा को देखकर कृष्ण ने कहा ॥ १ ॥

विभासरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ २३ ॥

किसलयशयनतले कुरु कामिनि चरणनलिनविनिवेशम् ।
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ।
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर मां राधिके ! ॥ध्रुं० ॥१॥

हे कामिनि ! कोमल-कोमल पत्तों की सेज के ऊपर अपने चरण कमलों का विनिवेश करो जिससे तुम्हारे चरणों की समानता करने वाले इन शय्या के पल्लवों को अपने परभाव का अनुभव हो। साथ ही हे प्रिये ! मुहूर्त्तमात्र के लिए अपने वशीभूत मेरे अनुकूल हो जाओ ॥ १ ॥

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम्।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम् ॥ क्षण० ॥२॥

हे प्यारी ! आप बहुत दूर से आयी हैं अतः (थकावट दूर करने के लिए) मैं अपने हाथों से आपके चरणों को दबाता हूँ। कृपया मेरे समान ही आप भी इन नूपुरो का आदर कीजिये। इनको शय्या पर उतारकर रख दीजिये ॥ २ ॥

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम्।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ॥ क्षण० ॥३॥

हे राधे ! चन्द्र के समान अपने मुख से अमृत तुल्य वाक्य कहो, तथा विरहशान्त्यर्थ मैं तुम्हारे कुचों पर से वस्त्र को हटाता हूँ ॥ ३ ॥

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमित पुलकितमन्यदुरापम्।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ॥क्षण०॥४॥

हे राधे ! प्रिय के आलिंगन के लिए शीघ्रता से रोमाञ्चित तथा अन्यों को दुष्प्राप्य कलश के सदृश इन स्तनों को मेरे वक्षःस्थल पर धरो एवं मेरी काम-पीड़ा दूर करो ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपदय भामिनि ! जीवय मृतमिव दासम्।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम् ॥५॥

हे भामिनि ! आप के ऊपर अनुरक्त हृदयवाले, विरह ज्वाला से दग्ध अतएव अविलासी मृततुल्य सेवक को अपने अधररूपी अमृतपान से जीवन दान दो ॥ ५ ॥

शशिमुखि ! मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम्।
श्रुतियुगले पिकरवविकले शमय चिरादवसादम् ॥ क्षण० ॥६॥

हे चन्द्रानने ! अपनी मणिमय करधनी को अपने मधुरगान के शब्द के समान बजाओ तथा कोयल के गीतों से व्यथित मेरे कानों की पीड़ा को दूर करो ॥ ६ ॥

मामतिविफलरुषा विफलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।
मीलितलज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम् ।।क्षण०।।७।।

हे प्रिये ! विफल रोष के कारण अत्यन्त उद्विग्न तुम्हारे ये नेत्र मुझे देखने के लिए लज्जायुक्त हो रहे हैं, अतः विश्राम करो, क्यों वृथा रति खेद को बढ़ा रही हो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जययतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम् ॥ क्षण० ॥ ८ ॥

जयदेवकवि द्वारा रचित यह गीत जिसमें पदे-पदे श्रीकृष्ण के आनन्द का वर्णन है, रसज्ञों के लिए रसभाव का उत्पादक हो ॥ ८ ॥

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडाश्लेषे निमेयेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्वभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ॥ १ ॥

जब राधा तथा कृष्ण की परम रसमयी रतिक्रीड़ा प्रारम्भ हुई, उस समय प्रगाढ़ आलिंगन के समय रोमाञ्च बुरे लगते थे, क्रीड़ा के अभिप्राय से पलक गिरना भी विघ्नभूत लगता था, केलि-कथा भी अधर पान करते हुए कष्ट-दायिनी प्रतीत हुई। राधा कृष्ण के उस सुरत संग्राम में अनेक प्रकार का आनन्द उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरधरेणापीडित. पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ॥ २ ॥

राधा के हाथों से बंधे, स्तनों के भार से दबे, नाखूनों से चिकोटी लिये गये, दन्तक्षत किये गये, कटि से प्रताड़ित, बालों को हाथों से खींचकर नमाये गये, अधर पान से विकलीकृत, इस प्रकार की कष्टप्रद अवस्थाओं के प्राप्त होने पर भी रतिक्रीड़ा में कृष्ण की अवर्णनीय सन्तुष्टि हुई। अहो कामदेव की भी गति कुटिल ही है ॥ २ ॥

मारङ्क रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्धयति ॥ ३ ॥

राधा और कृष्ण के बीच विपरीत रतिकेलि युद्ध प्रारम्भ होने पर राधा ने पतिपर विजय प्राप्त करने के लिए साहस से कुछ समय तक कृष्ण के वक्षःस्थल के ऊपर सम्भ्रमपूर्वक रति की, किन्तु शीघ्र ही उनकी जाँघ स्तब्ध हो गयी, बाहें शिथिल हो गयीं, छाती घड़कने लगी तथा नयन निमीलित होने लगे, अतः सत्य ही है, स्त्रियों में पौरुष कहाँ से आ सकता है ॥ ३ ॥

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धूताऽधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्द्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथां चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥ ४ ॥

राधा की गुलाबी नाखूनों से चिह्नित वक्षःस्थल, रात्रि के जागरण से लाल-लाल आँखें, लालिमा रहित अधरोष्ठ, बिखरा हुआ मालायुक्त केशकलाप, कमर की करधनी के समीप का खुला हुआ वस्त्र देखकर प्रातः श्रीकृष्ण का चित्त कामबाणों से छिदने लगा ॥ ४ ॥

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं
राधायाः स्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥ ५ ॥

हे सुन्दरि ! मैं अनुमान करता हूँ कि क्षीरसागर के तीर पर आपने मुझे स्वयं वर लिया, इसी से सम्भव है कि आपको न पा करके मृडानीपति (शङ्कर) ने विष पी लिया, इस रीति से अपनी पूर्वकथा से दूसरी ओर ध्यान देनेवाली राधा के स्तनों के वस्त्र (अञ्चल) को हटाकर उनके स्तनों के अग्रभाग (चूचुक) को देखनेवाले श्रीकृष्ण आप को शुभकारी हों ॥ ५ ॥

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेनलोलौ कपोलौ
स्पष्ट-दष्टाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।

काञ्ची काञ्चिद्‌गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितं स्रग्धरेयं धुनोति ॥ ६ ॥

जिनका जूड़ा बिखर गया है, लटें चञ्चल हो गली हैं, पसीने की बूँदों से गाल भींगे हुए हैं, चुम्बित ओष्ठ की कान्ति स्पष्टरूपेण विदित हो रही है, घड़े के समान स्तनों की शोभा से मुक्तावली तिरस्कृत हो रही है, करधनी सिकुड़ी हुई एक ओर पड़ी है, प्रातः ऐसी दशापर राधा अपने हाथों से कुचों तथा जघन को आच्छादित कर अपने रूप को देखती हुई, सूखे हुए[1] फूलों की माला को धारण करती हुई भी श्रीकृष्ण को आनन्दकारिणी मालूम पड़ीं ॥ ६ ॥

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥ ७ ॥

श्वासोच्छ्‌वास के कारण कुछ हिलते हुए कुचों के आलिङ्गन से, हर्षातिरेक के कारण शिथिल शरीरवाली मृगनयनी के कुछ बन्द नेत्रवाले, हास्ययुक्त तथा सीत्कारों की धारा से अव्यक्त एवं व्याकुलता से उत्पन्न शब्दों से प्रफुल्लित, दाँतों की किरणों से प्रक्षालित अधरवाले मुख को भाग्यवान् हो पीते हैं ॥ ७ ॥

अथ सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी ।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् रतिक्रीड़ा के परिश्रम से परिश्रान्त स्वाधीनभर्तृका राधा, कान्त (श्रीकृष्ण) से अपना शृङ्गार करने के लिए कहने लगीं ॥ ८ ॥

रागकरीरागे रूपकताले[2] अष्टपदी ॥ ४ ॥

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने ॥ ध्रु० १ ॥

---

१ स्रग्धरा का लक्षण भी है। यथा-म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

२ कोई यति ताल भी कहते हैं ।

चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करती हुई राधा ने कहा—"हे यदुनन्दन ! चन्दन के सदृश शीतल अपने हाथों से कामदेव के मङ्गल-कलश के समान मेरे स्तनों पर कस्तूरी से पत्र रचना कीजिए" ॥ १ ॥

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने ॥ निज०॥ २ ॥

हे पीताम्बरधारिन् ! काम-बाणों को छोड़नेवाले मेरे नयनों में भ्रमरों के झुण्ड के सदृश, आपके अधरों से चुम्बन के कारण मिटे हुए मेरी आँखों के कज्जल को उज्वल करिये ॥ २ ॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविलासनिरोधकरे श्रुतिमण्डले।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवंशे निवेशय कुण्डले ॥निज० ॥३॥

हे प्रिय कृष्ण ! नेत्ररूपी मृगों के विलास को रोकनेवाले मेरे कानों में कामदेव के पास सदृश कुण्डल पहनाइये ॥ ३ ॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं रुचिरं मम सम्मुखे।
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजने कमलकं मुखे ॥ निज०॥ ४ ॥

हे मनोहरवेषधारिन् कृष्ण ! सुन्दरता में कमल को भी जीतने वाले मेरे इस मुख पर विखरी हुई, भ्रमरसमूह की शोभा उत्पन्न करने वाली, कामीदीपक मेरी अलकावली को अपने हाथों से अच्छी प्रकार सँवारिये ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिनरजनीकरे।
विहितकलङ्ककल कमलानन विश्रमितश्रमसीकरे ॥निज० ॥ ५ ॥

हे कमलानन ! स्वेद-विन्दु रहित, अर्धचन्द्र के सदृश मेरे भाल-पट्ट पर चन्द्रमा के कलंक के समान कस्तूरी का सुन्दर तिलक करिये ॥ ५ ॥

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे।
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे ॥ निज० ॥६॥

हे मानन्द ! रति के समय ढीले हुए मेरे मोरपङ्ख के सदृश सुन्दर जूड़े में, जो कामदेव की ध्वजा, चामर के समान है, फूल गूँथिए ॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे ॥ निज० ॥७॥

हे प्राणनाथ ! मेरे, कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथी की गुफा (कन्दरा) स्वरूप सुन्दर कटि के ऊपर आप रत्नों को करधनी एवं वस्त्र, आभूषण पहनाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने ।
हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥निज० ॥८॥

हे रसिको ! श्रीकृष्ण के ध्यानरूपी अमृत से कलियुगी पापनाशक, कल्याणप्रद जयदेव कवि द्वारा रचित शुभप्रद गीत की ओर अपने अन्तःकरण को सदयं यथास्यात्तथा कीजिये ॥ ८ ॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम् ।
कलय वलयश्रेणी पाणौ पदे कुरु नूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥ १ ॥

राधा ने कहा—"हे प्राणप्रिये ! मेरे स्तनों के ऊपर पत्र रचना कीजिए, गालों पर चित्र रचना कीजिए, कमर में करधनी पहिनाइए, जूड़े में फूलो को गूँथिए, हाथों में कंकण तथा पैरों में नुपूर पहनाइए।" इस प्रकार राधा ने जैसा कहा पीताम्बरधारी कृष्ण ने भी हर्षित होकर वैसा ही किया ॥ १ ॥

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे
सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसङ्कलनया बिभ्रद्वपुर्विक्रियाम् ।
पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुः शतैः
कायव्यूहमिवाचरन्नुपचिताकूतो हरिः पातु वः ॥ २ ॥

पर्यङ्कृत शेषनाग के शिर की मणियों के प्रतिबिम्ब से अनेक वेशवाले, मानो जैसे चरण सेविका लक्ष्मी को सैकड़ों आँखों से देखने के लिए ही विविध प्रकार से शरीर धारण किये हों, ऐसे कामभावयुक्त भगवान् कृष्ण आप लोगों का कल्याण करें ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
तच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥ ३ ॥

जो गानविद्या में प्रवीणता है, कृष्णजी का जो ध्यान है, तथा काव्यों में जो श्रृङ्गार रस के भेदों को रचनाएँ हैं उन सबके लिये पण्डितजन कृष्णपरायण जयदेव कृत गीतगोविन्द का परिशीलन करें (सीखें) ।। ३ ।।

साध्वी[1] माध्वी चिन्ता न भवति भवतः [2]शर्करे कर्कशासि
[3]द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि [4]क्षीर नीरं रसस्ते ।
[5]माकन्द ! क्रन्द कान्ताधर धरणितलं गच्छ यच्छन्ति भावं
यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ।। ४ ।।

जयदेव कवि अभिमान से अपने काव्य को प्रशंसा लिखते हैं —"इस लोक में जब तक श्रृङ्गार-रस मूलक गीतगोविन्द काव्य स्थित है तब तक, हे माध्वीक ! तेरी चिन्ता व्यर्थ है—अर्थात् तेरी मिठास निरर्थक है। हे शर्करे ! तुम इसको तुलना में कर्कश हो। हे द्राक्षे ! तुम्हे इसके सामने कौन देखेगा ? अर्थात् कोई नहीं। हे अमृत तुम इसके सामने मृत तुल्य हो। हे क्षीर ! तुम्हारा स्वाद इसके आगे पानी सा है। हे माकन्द ! तुम इसके कारण रोओ। हे मनोरमा नायिका के अधर तुम भी पाताल में चले जाओ। अर्थात् मेरे काव्य-रस को तुलना में उपर्युक्त सभी वस्तुएँ नीरस है ।। ४ ।।"

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतजयदेवकस्य ।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ।। ५ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये जयदेवपण्डितकृतौ सुप्रीत पीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः ।। १२ ।।

श्री भोजदेव के पुत्र तथा श्रीमती राधा देवी की कोख से प्रादुर्भूत जयदेव-कवि की यह वाणी-गीतगोविन्द कविता श्री पराशरादिक पूर्व कवियों के कण्ठ में समर्पित हो ।। ५ ।।

इति पण्डितश्रीकेदारनाथशर्मणा इन्दु' नामकभाषाटीका-नूदितं गीतगोविन्दकाव्यं समाप्तम्

शुभम्

---

१ माध्वीक=महुआ। २ शर्करा=चीनी, (शक्कर)। ३ द्राक्षा=मुनक्का। ४ क्षीर=दूध। ५ माकन्द=मीठा फल।

राधाविनोदकाव्यम्

मालीनो घनमाली मालीनो वनमाली
मालीनो वनमाली मालीनोऽवतु माली ॥ १ ॥

विधुसुहृद्विरहानलपीडिता
विधुसुहृत्तरलाऽनिलपीडिता ।
विधुसुहृद्वदनाऽलिमपीडिता
विधुसुहृत्सुगिरोऽकिरदीडिता ॥ २ ॥

उदयते दयते दयते शशी
सखि करैरकरैस्तिमिराकरैः ।
दिशभिमां चर मां च रमारमं
कमलकोमललोलविलोचनम् ॥ ३ ॥

कुदुदबन्धुरबन्धुरबन्धुरः
स तनुतेऽतनुते तनु ते ततः ।
हिमकरोऽहिमता हि मतांमतां
किमनु मां सादृशं सदृशं विधोः ॥ ४ ॥

कमलिनीमलिना मलिनाऽलिना
विचलता च लतासु लताशुभाम् ।
विधुतभां विधुतां विधुभानुभि--
र्नयनयोरनयोर्नयसीनयोः ॥ ५ ॥

सखि विभाऽतिविभाऽविभा
न सरसी सरसारससारसैः ।
अलिकुलैर्विधुना विधुता धुता
विनमदब्जमुखो विमुखी स्थिता ॥ ६ ॥

कुमुदिनीदयितो दयितोनतां
निजकरैरकरैर्दहति स्फुटम् ।
यदयमेकपदे विपदेऽभव-
द्विकचपुष्करिणीहरिणीदृशः ॥७॥

विधुरिता धुरिता धुरितादहम्
विधुरयं जनितो जनितोऽङ्कभृत् !
इह तदक्षिगते क्षिगतेऽब्जिनी
रविमतिर्विमतिर्निमिमील सा ॥८॥

मलयपन्नगपन्नगमण्डली-
कवलितो वलितो नु वनानिलः ।
अदयमङ्गमदङ्ग मदङ्गकं
दहति यद्भ्रमयद् भ्रमयन्नयम् ॥९॥

अयि रसालवनी नवनीरनी-
रगवनी नवनीपवनीवती ।
अलिकुलालिकुलाऽलिकुलाकुला
प्रति हि मामहिमामहिमा हिमा ॥१०॥

बकुलमाकुलमालि परागितं
मधुपरागपरागपरालिभिः ।
विशदशारदशारदशारदं
शशकलङ्ककलङ्ककलङ्कितम् ॥११॥

नवमशोकमशोकमशोकदे
सुरभितारभितालिरतारतम् ।
सखि समाश्रय माश्रयमाश्रयः
कमलिनीमलिनीप इवाऽगतः ॥१२॥

सखि हिताऽसिमतासि मतात्थ मां
नवमशोकमशोकमशोकदाम् ।
तदिह मामव मामवताममां
व्रज हरिं नवनीरदनीरदम् ॥१३॥

इति सखीगदिताऽगदिताऽदिता-
नवनराय वराय वराय वा ।
इति गिरं कलया कलया कला
पटु गिरा मृदुता मृदुतादुता ॥१४॥

मलयजं तनुतेऽतनु ते तनौ
सहचरीनलिनी नलिनोदलम् ।
सुनयनाऽनलदं नलदं चसा
तदपि सीदति सीदति बन्धुता ॥१५॥

समुदितेऽमुदितेऽमुदितेक्षणे
हिमकरे मकरेनकरे श्रुती ।
भिकरवेऽवरवेवर वेति सा
हरिणलांछनलांछनलांछना ॥१६॥

न सहते सहते सह ते सखी
तव वियोगवियोगमयोगहृत् ।
सपदि तां तरुणीं सरणिं मणिं
किरतु नाम नव नवनीविजम् ॥१७॥

अथ तया कलया कलया शुभां
वनजदामजदामजदीप्तिमान् ।
हरिरगात्तमगात्तमगाच्च सा
मुदमतीवमतीवदृशोः स्थितम् ॥१८॥

रामचन्द्रकविना कविनाऽदः
पूरुषोत्तमसुतेन सुतेन ।
राधिकाहृदयशोकदमासी-
द्राधिकाहृदयशोकदमासीत् ॥१९॥

इति श्रीपुरुषोत्तमात्मजजनार्दननन्दनरामचन्द्रकविकृतं
राधाविनोदाख्यं काव्यं समाप्तम् ॥



